पंजीयन संख्या : 68939/98

ज्ञान तत्व

सत्यता एवं निष्पक्षता का निर्भीक पाक्षिक

JULY 2026

अंक - 08

शोषण रोकने में राज्य की सक्रियता कितनी उचित, कितनी अनुचित।

3

श्रम शोषण और मुक्ति

6

496

प्रकाशन की तिथि - 31-07-2026 पोस्ट की तिथि - 15-08-2026

सिंहावलोकन

08 **प्रश्नोत्तर**

14 **मुनि जी की विविध विषयों पर लेख**

12 **नई समाज व्यवस्था**

17 **अयोध्या से लोकव्यवस्था जागरण अभियान का राष्ट्रीय शंखनाद- ज्ञानेन्द्र आर्य**

पत्र व्यवहार का पता

बजरंग लाल अग्रवाल पोस्ट बाक्स 15, रायपुर (छ.ग.) 492021

website : margdarshak.info

प्रकाशक, संपादक व स्वामी - बजरंगलाल
9617079344

mail : Support@margdarshak.info

मुख्य कार्यालय-
ज्ञानयज्ञ परिवार आश्रम
रामानुजगंज छत्तीसगढ़ 497220
8318621282, 9630766001

लोक स्वराज अभियान
303 कृष्णा शिप्रा अजूरा अपार्टमेंट कौशांबी
गाजियाबाद 201012
9325683604, 9012432074

प्रधान संपादक
बजरंग लाल अग्रवाल
(बजरंग मुनि)

संपादक मण्डल
नरेन्द्र सिंह
संजय तिवारी
विपुल आदर्श

सहयोगी संपादक
ज्ञानेन्द्र आर्य

सदस्यता नियमन
संजय गुप्ता 872669477
कुशल दुबे 7999934238

सज्जा
लाल बाबू रवि

वितरण एवं मुद्रण सहयोग
रबीन्द्र विश्वास

ज्ञान केन्द्र विचार, समन्वय और परिवर्तन के तीर्थ

शोषण रोकने में राज्य की सक्रियता कितनी उचित, कितनी अनुचित।

बजरंग मुनि
प्रधान संपादक

किसी मजबूत द्वारा किसी कमजोर की मजबूरी का लाभ उठाना शोषण माना जाता है। शोषण में किसी प्रकार का बल प्रयोग नहीं हो सकता। शोषण किसी की इच्छा और सहमति के बिना नहीं हो सकता। शोषण किसी कमजोर द्वारा मजबूत का भी नहीं हो सकता। आवश्यक है कि शोषित कमजोर हो, मजबूर हो और शोषण से सहमत हो। शोषण कभी भी अपराध नहीं होता, न ही समाज-विरोधी कार्य होता है। शोषण किसी के मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण नहीं करता, किन्तु शोषण अनैतिक और असामाजिक कार्य हो सकता है।

एक बुढ़िया किसी प्यास से छटपटा रहे राजा से एक गिलास पानी के लिये उसका आधा राजपाट मांग ले तो यह बुढ़िया द्वारा किया गया शोषण नहीं माना जाता। किन्तु कोई अमीर किसी प्यासी बुढ़िया से एक गिलास पानी के लिए उसकी मजबूरी का लाभ उठाकर उसकी जमीन ले ले, तो यह उस अमीर द्वारा किया गया शोषण माना जाएगा। वर्तमान समय में मुख्य शोषण छह प्रकार के माने जाते हैं — 1. अमीरों द्वारा गरीबों का। 2. बुद्धिजीवियों द्वारा श्रम का। 3. परिवार व्यवस्था में पुरुषों द्वारा महिलाओं का। 4. राजनीतिक शक्ति प्राप्त तंत्र द्वारा लोक का। 5. सवर्णों द्वारा अवर्णों का। 6. धूर्त व्यक्तियों द्वारा शरीफ लोगों का। ये छह प्रकार के शोषण समाज में लंबे समय से चल रहे हैं और आज भी चल रहे हैं। वैसे तो शोषण शब्द का दुरुपयोग सभी राजनेता करते हैं, किन्तु साम्यवादी और समाजवादी शोषण शब्द का दुरुपयोग करने में सबसे आगे रहते हैं। ये लोग आर्थिक, सामाजिक गैर-बराबरी को तो शोषण मानकर बहुत हल्ला करते हैं, किन्तु राजनीतिक गैर-बराबरी को निरंतर बढ़ाते चले जाते हैं। जबकि राजनीतिक असमानता शोषण का सबसे बड़ा हथियार है। राज्य जितना ही इस प्रकार के शोषण को रोकने में हस्तक्षेप करता है, उतना ही शोषण अधिक बढ़ता जाता है, भले ही उसका स्वरूप क्यों न बदल जाए। क्योंकि सच्चाई यह है कि किसी प्रकार का शोषण रोकने के लिए राज्य किसी वर्ग को विशेष अधिकार देता है और उसका यह दुष्परिणाम होता है कि उस वर्ग के धूर्त लोग दूसरे वर्ग के शरीफ लोगों का शोषण शुरू कर देते हैं। इस तरह शोषण रोकने के नाम पर शोषण करने वाले धूर्त लोगों का एक नया वर्ग खड़ा हो जाता है, जिसका समाधान राज्य नहीं कर पाता क्योंकि राज्य ही ऐसे वर्ग के धूर्तों को संरक्षण देता है। मकान मालिक के विरुद्ध किरायेदारों को संरक्षण दिया गया। दहेज के विरुद्ध महिलाओं को संरक्षण दिया गया अथवा जाति प्रथा के विरुद्ध अवर्णों और आदिवासियों को संरक्षण दिया गया। इन सबका परिणाम एक ही है कि संरक्षित वर्ग के धूर्तों ने असंरक्षित वर्ग के शरीफों का शोषण किया। एक दूसरी स्थिति यह भी बनी है कि राज्य समाज का सबसे बड़ा शोषक होता है। राज्य शोषण रोकने के नाम पर शक्ति अपने पास इकट्ठी करते जाता है और उस शक्ति का दुरुपयोग शोषण के रूप में प्रकट हो जाता है। जनहित के नाम पर देश में ऐसे हजारों कानून बने हैं जो राज्याश्रित शोषण के हथियार का काम करते हैं।

मजबूत द्वारा कमजोर की कमजोरी का लाभ उठाना ही शोषण माना जाता है। शोषण अपराध नहीं होता, किन्तु अनैतिक होता है। शोषण रोकने का सबसे अच्छा तरीका है कमजोर की मजबूरी को कम करने का प्रयास, किन्तु राजनेता ऐसा प्रयास न करके हमेशा मजबूत की मजबूती को कम करने का प्रयास करता है। परिणाम होता है कि वर्ग विद्वेष, वर्ग संघर्ष और लाभ होता है बिचौलियों को अर्थात तंत्र को। एक व्यक्ति मजबूरी में किसी संपन्न व्यक्ति के घर में पचास रुपये में काम कर रहा है जबकि उसकी उचित मजदूरी दो सौ रुपये और सरकार द्वारा घोषित ढाई सौ रुपये है। तंत्र से जुड़े लोग उस काम कर रहे व्यक्ति को पचास रुपये में भी काम देने की व्यवस्था न करके काम करने वाले और काम देने वाले के बीच टकराव पैदा करते हैं। मैं समझता हूँ कि यह भी एक प्रकार का शोषण है। छत्तीसगढ़ के मजदूर अधिक मजदूरी के लिये बाहर काम करने जाते हैं। छत्तीसगढ़ सरकार उन्हें शोषण से बचाने के नाम पर या तो रोकती है या कई प्रकार के कानूनों से जकड़ती है। इससे उन जाने वालों का लाभ हुआ या नहीं, यह अलग प्रश्न है, किन्तु छत्तीसगढ़ के उद्योगपतियों का अवश्य लाभ होता है। जिससे उन्हें कम मजदूरी में मजदूर मिलते रहते हैं। विचार करिये कि शोषण बढ़ा या घटा। भारत का हर पूंजीपति और बुद्धिजीवी पूरा प्रयत्न करते हैं कि कृत्रिम ऊर्जा सस्ती हो, जिससे उन्हें अप्रत्यक्ष सस्ता श्रम मिलता रहे। विचार करिये कि यह प्रवृत्ति श्रम शोषण है या नहीं। महिलाओं का शोषण कभी नहीं होता, या तो बलात्कार होता है या धोखा, किन्तु महिला शोषण रोकने के नाम पर महिला और पुरुष के बीच एक दीवार खड़ी की जाती है, जिसका लाभ तंत्र उठाता है। एक रोटी के लिये भूखी महिला को रोटी देकर एक यौन-भूखा पुरुष अपनी भूख मिटाता है तो नैतिक तरीके से दोनों की भूख मिटाने की व्यवस्था न करके दोनों के बीच बाधा उत्पन्न करने वालों

को यदि शोषक न कहा जाए तो क्या कहा जाए? आजकल प्राइवेट स्कूलों की फीस के नाम पर बहुत नाटक हो रहा है। कई मुख्यमंत्री भी इस बहती गंगा में हाथ धो रहे हैं। वर्तमान में महंगी फीस लेकर पढ़ा रहे प्राइवेट स्कूलों को रोकने की अपेक्षा क्यों न हम कम फीस वाले अच्छे स्कूल शुरू करते हैं। कौन रोकता है आपको स्वस्थ प्रतियोगिता से? किन्तु करना-धरना तो कुछ है नहीं और जो कुछ हो रहा है उसे शोषण के नाम पर अव्यवस्थित करना ही आज की राजनीति है। ऐसे लोगों के चमचे भी उनकी प्रशंसा करके उन्हें और मजबूत करते रहते हैं। किसी कमजोर के साथ करने योग्य व्यवहार मजबूत का कर्तव्य होता है, कमजोर का अधिकार नहीं। समानता का व्यवहार करना भी मजबूतों का कर्तव्य होता है, कमजोरों का अधिकार नहीं। राज्य हमेशा मजबूत के करने योग्य व्यवहार को कमजोर का अधिकार बताकर वर्ग संघर्ष की परिस्थितियाँ पैदा करता रहता है। इससे समाज में टूटन तो आती है, किन्तु लाभ किसी का नहीं होता। स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा में पिछड़ रहे की आप सहायता तो कर सकते हैं, किन्तु आगे निकल रहे के निकलने में बाधा पहुँचाना आपका आपराधिक कृत्य होगा।

शोषण रोकना परिवार व्यवस्था का काम है, समाज व्यवस्था का काम है। सरकार का नहीं। शोषण रोकने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका परिवार और गांव की होती है क्योंकि परिवार और गांव द्वारा आंतरिक व्यवस्था में सबकी सहमति समान होती है। मैं मानता हूँ कि वर्तमान समय में ऐसी समानता का अभाव है और इस अभाव का दुष्परिणाम शोषण के रूप में सामने आता है। किन्तु ऐसी व्यवस्था बनना बहुत कठिन नहीं क्योंकि परिवार व्यवस्था यदि लोकतांत्रिक है तो उसमें शोषण हो ही नहीं सकता। शोषण का अंतिम आधार समाज व्यवस्था है। प्राचीन समय में समाज को यह अधिकार था कि वह किसी प्रकार के अनैतिक कार्य के विरुद्ध अपने बहिष्कार रूपी अधिकार का प्रयोग कर सके। जब से राज्य व्यवस्था मजबूत हुई और उसमें परिवार, गांव और समाज के अनुशासन के इस बहिष्कार रूपी हथियार पर भी रोक लगाकर अपना हस्तक्षेप बढ़ा दिया, तब से सम्पूर्ण समाज के शोषण का ठेका राज्य रूपी एकमात्र इकाई के पास चला गया। अब समाज न तो शोषण को रोकने में कुछ कर सकता है, न ही राज्य को नियंत्रित कर सकता है क्योंकि जनहित की परिभाषा राज्य करता है। शोषण की परिभाषा भी राज्य ही करता है तथा राज्य जब चाहे तब शोषण को अपराध या अपराधों को शोषण के रूप में बदल सकता है। मेरा अंत में सुझाव है कि शोषण मुक्ति के लिए सबसे पहले शोषण और अपराध को अलग-अलग करें। शोषण मुक्ति से राज्य को अलग करें तथा शोषण मुक्ति में परिवार, गांव तथा समाज को अधिक सक्रिय करने का प्रयास करें।

यौन शोषण, घातक शब्द के घातक परिणाम

कुछ वर्ष पूर्व की घटना है कि बिहार के पूर्णिया जिले के विधायक राजकुमार केशरी की उनके ही निवास पर उनकी ही सुपरिचित महिला मित्र रूपम पाठक ने धोखा देकर हत्या कर दी। प्रकरण राष्ट्रीय चर्चा का विषय बना। हत्या के पक्ष और विपक्ष में गोलबंदी शुरू हो गई। भावनाओं को उभार कर यथार्थ को पीछे करने के राष्ट्रव्यापी प्रयत्न शुरू हुए। मामले में तथाकथित चरित्रवान महिलाएँ भी कूद पड़ीं। महिला-पुरुष वर्ग भेद भड़काने का अच्छा अवसर था। मामला राजनीतिक प्रतिस्पर्धा का भी था। विरोधी राजनेताओं ने भी अच्छा अवसर मानकर अपनी-अपनी औरतों को ही आगे कर दिया। आजकल राजनीति में कई प्रकार के विंग हमेशा खा-पीकर तैयार रखे जाते हैं। पता नहीं कब किसकी जरूरत पड़ जाए। इस प्रकरण को राजनीतिक प्रयत्नों ने जिला और पुरुष में बाँटना शुरू कर दिया। घटना इस तरह बताई जाती है कि पूर्णिया के विधायक राजकुमार केशरी का किसी महिला रूपम पाठक से अवैध संबंध था। विधायक केशरी अपनी अतिरिक्त यौन तृप्ति के लिये रूपम का उपयोग करते थे। बदले में रूपम को अतिरिक्त लाभ स्वाभाविक ही था। रूपम की लाभ की इच्छाएँ बढ़ने लगीं और राजकुमार की यौन आवश्यकताएँ घटने लगीं तो समझौते में दरार आनी शुरू हुई। रूपम ने थाने में रिपोर्ट कर दी। राजकुमार ने दबकर रूपम को फिर पटा लिया। रूपम ने अपना बयान बदल दिया और राजकुमार कानून से मुक्त हो गये। राजकुमार की अतिरिक्त यौन आवश्यकता पूर्ति के लिये हो सकता है कि रूपम की लड़की आगे आई हो या उसे फुसलाया गया हो। धीरे-धीरे अन्य बातें स्पष्ट होंगी। अथवा यह भी संभव है कि किसी राजकुमार विरोधी ने रूपम को हथियार बनाया हो। कुछ भी हो सकता है, किन्तु एक बात सच है कि रूपम किसी भी रूप में भावना प्रधान नहीं हो सकती। रूपम का अति महत्वाकांक्षी होना और राजकुमार के साथ व्यापारिक मोल-भाव करना स्वयं सिद्ध है और रूपम अपना माल कहीं और भी बेच सकती थी। ऐसी भी कोई स्थिति नहीं थी कि रूपम के लिये खरीदारों का अभाव रहा होगा, विशेषकर तब जब उसका महत्व विधायक निवास ने बढ़ा रखा हो। यह भी संभव है कि वह किसी अन्य के हाथों खेल गई हो और उसने अपने महिला शरीर से भी अधिक कोई बड़ा सौदा कर लिया हो। कुछ भी हो सकता है, लेकिन हत्या की यह घटना गंभीर प्रश्न खड़े करती है। उस समय इस घटना ने महिला-पुरुष के बीच गंभीर विवाद पैदा कर दिया था और आज भी यह विषय गंभीर बना हुआ है। इस घटना में तीन मुद्दे विचारणीय हैं— (1) यौन शोषण (2) हिंसा के प्रति समर्थन (3) महिला-

पुरुष वर्ग विद्वेष विस्तार के प्रयत्न। पहली बात तो यह है कि किसी भी प्रकार का शोषण कोई अपराध नहीं होता क्योंकि शोषण में न कहीं बल प्रयोग होता है, न जालसाजी, धोखाधड़ी। शोषण किसी की मजबूरी से लाभ उठाने के प्रयत्न का नाम है जो असामाजिक तो हो सकता है, किन्तु समाज-विरोधी कार्य नहीं अथवा जो अनैतिक तो हो सकता है, किन्तु अपराध नहीं। दुर्भाग्यवश हमारे अच्छे-अच्छे लोग भी असामाजिक और समाज-विरोधी या अनैतिक और अपराध या गैरकानूनी और अपराध का अंतर नहीं समझ पाते और यह नासमझी ही उन्हें भी भ्रमित करती रहती है, जिस भ्रम का दुष्प्रभाव सम्पूर्ण समाज पर पड़ता है।

शोषण स्वयं में कोई अपराध नहीं होता। यौन शोषण तो कभी होता ही नहीं। बहुत विचार करने के बाद भी मुझे कभी इस शब्द का अर्थ प्रासंगिक नहीं दिखा। यौन तृप्ति द्विपक्षीय आवश्यकता है, एकपक्षीय नहीं। यौन तृप्ति पुरुष आवश्यकता के रूप में सिद्ध करना एकपक्षीय सोच है और घातक है। यह एक मात्र ऐसा कार्य होता है जिसमें दो विपरीत लिंग एक ही क्रिया से एक समान तृप्त होते हैं। ऐसी अन्य कोई क्रिया नहीं। जब किसी महिला को यौन तृप्ति के अतिरिक्त किसी विशेष लाभ की इच्छा हो और किसी पुरुष को किसी अन्य व्यय के स्थान पर विशेष यौन तृप्ति की इच्छा हो तथा दोनों के बीच सामाजिक नियम-कानूनों को तोड़ते हुए सौदा पट जावे तो उस सौदे को यौन शोषण कहने की एक गलत परंपरा-सी चल पड़ी है। मेरी जानकारी अनुसार डॉ. राममनोहर लोहिया अकेले ऐसे व्यक्ति हुए जिन्होंने बलात्कार के अतिरिक्त किसी भी अन्य स्त्री-पुरुष संबंध को चर्चा योग्य भी मानने से इनकार कर दिया। गांधी ने तो महिला उत्पीड़न जैसे अनर्गल शब्दों को हवा देकर और भी समस्याएँ पैदा कर दीं। वर्तमान परिस्थितियों में शोषण शब्द को ही बेमतलब की बात मान लिया जाना चाहिए, यौन शोषण तो वैसे भी अर्थहीन शब्द है।

हम दूसरा विचार करें हत्या जैसी क्रिया पर। हत्या एक क्रिया है जिसमें किसी अन्य के मूल अधिकारों पर हिंसक आक्रमण होता है। यह क्रिया अपवाद स्वरूप परिस्थितियों को छोड़कर किसी भी अन्य परिस्थिति में समाज के अन्दर न मान्य है, न स्वीकृत। ऐसी हिंसा का उपयोग अपराध नियंत्रण के उद्देश्य से समाज द्वारा बनाई गई एक विशेष सेल, जिसे शासन कहते हैं, के द्वारा ही एक विशेष प्रक्रिया द्वारा किया जा सकता है। व्यक्ति को तो ऐसी छूट अपवाद स्वरूप ही प्राप्त है। वे अपवाद भी तीन आवश्यक हैं— (1) जब आपके मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होता हो। (2) आपके समक्ष न्याय प्राप्ति का कोई अन्य मार्ग उपलब्ध न हो। (3) जब आप भावनाओं में न बह रहे हों। रूपम-राजकुमार प्रकरण की स्थितियों पर विचार करें। रूपम पर कोई बलात्कार नहीं हो रहा था। किसी सहमति और समझौते के अन्तर्गत एक पुरुष द्वारा यौन तृप्ति मात्र हो रही थी। न्याय प्राप्ति के अन्य मार्ग भी उपलब्ध थे। ऐसी स्थिति में साधारण बल प्रयोग की भी अनुमति नहीं हो सकती, हत्या का तो कोई प्रश्न ही नहीं है। मैं तो कोई एक भी आधार नहीं पाता जिसके माध्यम से हत्या की निन्दा न करूँ। समाज में हिंसा का वातावरण चिन्ताजनक स्तर तक बढ़ रहा है। किसी भी परिस्थिति में सामाजिक हिंसा का विरोध होना ही चाहिए। मैं कोई गांधीवादी तो हूँ नहीं जो सरकारी हिंसा का विरोध करूँ और नक्सलवादी हिंसा का समर्थन। मैं कोई नाटक न करके साफ-साफ कहता हूँ कि सामाजिक हिंसा का किसी भी परिस्थिति में, चाहे वह हिंसा किसी के द्वारा क्यों न की जाए, आलोचना तो होनी ही चाहिए, यदि संभव हो तो विरोध भी। सरकारी हिंसा का मैं समर्थक हूँ, जब तक विरोध करने का कोई स्पष्ट कारण न हो। मैं जरा भी नहीं सोच पा रहा कि रूपम पाठक द्वारा की गई हिंसा के समर्थन का आधार क्या है? यदि उसके सारे आरोप सच हों तब भी हिंसा का आधार कहाँ है। नागपुर की अदालत में महिलाओं ने मिलकर एक खूंखार अपराधी की पीट-पीट कर हत्या कर दी थी। वह मामला बिल्कुल भिन्न था और यह भिन्न। उसमें बलात्कार था और इसमें समझौता। उसमें कानून बेबस हो गया था और इसमें कानून का सहारा लिया ही नहीं गया। उस हत्या में बहादुरी थी और इसमें धोखा। इसके बाद भी मैंने उस हत्या की समीक्षा की थी, समर्थन नहीं। रूपम का मामला तो समीक्षा योग्य भी नहीं। यह तो पूरी तरह या तो आलोचना योग्य है या विरोध योग्य।

तीसरा विचारणीय बिन्दु है महिलाओं का प्रदर्शन। इस मामले को महिला अत्याचार का रूप देने की कोशिश की गई। मुझे नहीं पता कि वे कौन महिलाएँ थीं जिन्होंने ऐसा पक्ष लिया। यदि वे रूपम की पारिवारिक या मित्र महिलाएँ थीं तो कोई खास बात नहीं। यदि वे विपक्षी दल की महिलाएँ थीं तब भी चिन्ता की बात नहीं। यदि वे रूपम सरीखी महिलाएँ थीं तब भी कोई बात नहीं। किन्तु वे यदि सामाजिक महिलाएँ थीं तो अवश्य चिन्ता की बात है। यह मामला किसी भी रूप में महिला-पुरुष वर्गभेद का मामला न होकर एक पुरुष और एक महिला के बीच का द्विपक्षीय विवाद है, जिसे अनावश्यक वर्गभेद का स्वरूप दिया गया था। कुछ लोग तो जानबूझकर ऐसा करते हैं, किन्तु कई लोग अनजाने में मीडिया प्रचार के शिकार हो जाते हैं। हमारे मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ का प्रतिष्ठित दैनिक नवभारत माना जाता है। नवभारत 6 जनवरी 2011 के सम्पादकीय का विषय था "रसूखदारों के लिये सबक"। सम्पादक ने रूपम के पक्ष में निष्कर्ष निकालते समय तथ्यों को छिपाने से भी परहेज नहीं किया। "सम्पादक ने लिखा कि कानून-व्यवस्था से विश्वास उठने के कारण ही शिक्षिका को यह आत्मघाती कदम उठाने के लिए बाध्य होना पड़ा है। इस घटना ने साबित कर दिया है कि प्रभावशाली नेताओं,

अफसरों व पुलिस के प्रति जनता में जबर्दस्त आक्रोश है। घटना के बाद यद्यपि विधायक के अंगरक्षकों ने महिला को पकड़ लिया और समर्थकों ने पिटाई भी कर दी, गंभीर महिला का उपचार जारी है। मुख्यमंत्री नीतीश कुमार भी इस घटना से स्तब्ध हैं तथा घटना की जाँच कर डीजीपी को शीघ्र रपट देने को कहा है। पीड़ित महिला ने पूर्णिया के खजांची हाट थाने में 28 मई 2010 को विधायक पर यौन शोषण का आरोप लगाते हुए प्राथमिकी दर्ज कराई थी लेकिन पुलिस अनुसंधान में मामले को राजनीति प्रेरित बताते हुए कोर्ट में रिपोर्ट पेश कर दी थी। इस मामले में पुलिस की ढिलाई से साफ है कि आज भी अंग्रेजों की तरह सत्तारूढ़ दल अपनी सत्ता और महत्ता बनाए रखने के लिए पुलिस को एक साधन के रूप में उपयोग कर रहे हैं।”

एक प्रतिष्ठित अखबार इस तरह तोड़-मरोड़ कर वर्ग विद्वेष का उपयोग करे, यह एक गंभीर प्रश्न है क्योंकि रूपम पाठक ने ही न्यायालय में अपना बयान बदलकर विधायक को निर्दोष घोषित किया। यह तथ्य ढका-छुपा न होकर स्पष्ट है, किन्तु सम्पादक महोदय ने, अपने निष्कर्ष प्रमाणित करने की जल्दी में, शायद घटना का वह अंश छोड़ दिया। यदि सम्पादक जी ने जानबूझकर ऐसा नहीं भी किया, तब भी उन्होंने जिस तरह संतुलित टिप्पणी न करके एकपक्षीय टिप्पणी की, उससे संदेह तो होता ही है। मेरे विचार में महिला और पुरुष दो वर्ग न हैं, न होने चाहिए। कानून की नजर में सबको समान होना चाहिए। महिला को विशेष अधिकार घोषित करना घातक परंपरा है क्योंकि न सभी महिलाएँ एक जैसी हैं, न सभी पुरुष। व्यक्ति के व्यक्तिगत गुण-दोषों का आकलन करके उसका वर्ग घोषित होना चाहिए, न कि वर्ग के अनुसार गुण-दोष। वर्ग के अनुसार गुण-दोष का निर्धारण करना घातक परंपरा है। इसके कारण अपराधी तत्वों को छिपने का आधार बन जाता है। महिला को एक वर्ग मानकर उसके गुण-दोष घोषित करने की गलत परंपरा के कारण ही धूर्त महिलाएँ ऐसे मामलों का लाभ उठाने के प्रयत्न में सक्रिय हो जाती हैं।

मेरा स्पष्ट मत है कि महिला सशक्तिकरण शब्द ही समाज तोड़क है। महिला और पुरुष एक-दूसरे की समान आवश्यकता और समान निर्भरता हैं। इसे अलग-अलग मात्रा में बाँटना घातक है। राजनेताओं को यह विभाजन सबसे अधिक लाभ देता है। शोषण एक दूसरा घातक शब्द है। यौन शोषण शब्द उसका सहायक है। सामाजिक हिंसा का समर्थन भी बहुत घातक है तथा सरकारी हिंसा का विरोध भी घातक है। वर्ग के आधार पर गुणों की अवधारणा तथा वर्गानुसार विशेष अधिकार देना भी घातक है। आज सम्पूर्ण समाज टूट नहीं रहा बल्कि तोड़ा जा रहा है। प्रचार माध्यम भी इस योजना में जाने-अनजाने सहायक हो रहे हैं। बहुत सावधानीपूर्वक वर्गविहीन हिंसा-मुक्त समाज व्यवस्था को मजबूत करना चाहिए। पंद्रह वर्ष पूर्व की यह घटना आज तो और भी अधिक प्रासंगिक हो गई है।

श्रम शोषण और मुक्ति

प्रारंभ से ही दुनिया में चार प्रकार की व्यवस्था के परिवार पाए जाते हैं— (1) बुद्धि, (2) शक्ति, (3) धन, (4) श्रम। इसी आधार पर वर्ण व्यवस्था का जन्म हुआ जिसमें योग्यता का आकलन करके मूल वर्ण “शूद्र” से ऊपर के तीन वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) में स्थानांतरित करने की व्यवस्था घोषित की गई। वर्ण निर्धारण पूरी तरह गुण, कर्म, स्वभाव पर निर्भर था, जन्म पर नहीं, किन्तु कालांतर में व्यवस्था में शिथिलता के कारण व्यवस्था रूढ़ बन गई और उसमें जन्मानुसार वर्ण की विकृति पैदा हुई।

आदर्श वर्ण व्यवस्था में श्रमजीवी का अर्थ शूद्र होता था। जो विकृत वर्ण व्यवस्था में शूद्र का अर्थ श्रमजीवी के रूप में बदल गया। श्रमजीवी के बुद्धिजीवी, राजनीतिज्ञ अथवा पूँजीपति बनने के द्वार सदा के लिये बन्द कर दिये गये। परिणामस्वरूप श्रमजीवी कभी व्यवस्था के ऊपर के तीन साझीदारों में भागीदारी कर ही नहीं सका। स्वतंत्रता के बाद स्थिति बदली। संवैधानिक रूप से वर्ण चयन योग्यता अनुसार होने लगा। शारीरिक शक्ति बल व्यवस्था से बाहर कर दिया गया और पूँजीपति, बुद्धिजीवी और श्रमजीवी नाम से तीन वर्ण ही व्यवस्था में रह गये। पूँजी प्रधान और बुद्धि प्रधान लोगों ने संवैधानिक व्यवस्था का ऐसा ताना-बाना बुना कि श्रम प्रधान वर्ग को भी व्यवस्था से पूरी तरह बाहर कर दिया गया। अब व्यवस्था में दो ही वर्ग बच गये — (1) धन, (2) बुद्धि अर्थात् बुद्धिजीवी और पूँजीपति। स्वतंत्रता के बाद की व्यवस्था में बुद्धिजीवियों का वर्चस्व हुआ। इन लोगों ने व्यवस्था का जो स्वरूप बनाया, उससे परिवार और गाँव को बिल्कुल बाहर करके सारा दायित्व अपने पास केन्द्रित कर लिया। श्रमजीवियों की व्यवस्था में शामिल होने की भूख की आंशिक पूर्ति परिवार और स्थानीय इकाई की व्यवस्था में हो सकती थी, किन्तु परिवार और स्थानीय इकाई को संवैधानिक व्यवस्था में नितांत पारिवारिक और स्थानीय मामलों में भी स्वतंत्र निर्णय के अधिकार से वंचित कर देने के कारण श्रमजीवी व्यवस्था से पूरी तरह बाहर हो गये। उनकी व्यवस्था का सारा संवैधानिक दायित्व शासन अर्थात् बुद्धिजीवियों का हो गया जिसमें श्रमजीवियों की भूमिका शून्य थी। श्रमजीवियों की कुल आबादी भारत में आधे से अधिक थी। श्रमजीवियों से प्रत्यक्ष टकराव संभव नहीं था। अतः बुद्धिजीवियों ने श्रमजीवियों को धोखे में रखकर समाज में अपनी नीतियाँ बनानी शुरू कर दीं। पूरे विश्व में पूँजी का प्रभाव सिद्ध हो चुका था। पूँजीवाद से संघर्ष के लिये कुछ बुद्धिजीवियों ने श्रम उत्थान का मुखौटा लगाकर वामपंथ

के नाम से बुद्धिजीवियों का नेतृत्व करना शुरू कर दिया। इन्होंने सत्तर वर्षों में इस बात का विशेष ख्याल रखा कि (1) श्रमजीवियों की तकलीफें कभी दूर न हों, (2) श्रमजीवियों को निरंतर तकलीफ दूर होती हुई दिखे, (3) श्रमजीवियों को निरंतर यह आभास होता रहे कि भारतीय शासन व्यवस्था में श्रमजीवियों का भी उचित प्रतिनिधित्व है, भले ही उन श्रमजीवियों का वर्तमान में श्रम से दूर-दूर तक का संबंध न हो।

मैं मानता हूँ कि किसी भी व्यवस्था में श्रमजीवियों की कोई भूमिका हो ही नहीं सकती, किन्तु पारिवारिक और स्थानीय व्यवस्था में यदि ऊपरी हस्तक्षेप शून्य हो जाता तो सम्पूर्ण व्यवस्था के नीचे के आधे हिस्से में उनकी भागीदारी संभव थी। पंचायती राज व्यवस्था के नाम पर स्थानीय इकाइयों को प्रशासनिक अधिकारों का एक टुकड़ा फेंक कर उस कार्य की पूर्ति का प्रचार भले ही किया जा रहा हो, किन्तु स्थानीय इकाइयों को विधायी अधिकार मिले बिना सब अपूर्ण ही है। दूसरी बात, व्यवस्था यह भी कर सकती थी कि श्रम की माँग और मूल्य को बढ़ने देकर श्रमजीवियों की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति की गारंटी तो तत्काल दे सकती थी। किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया और श्रमजीवियों का पूँजीवादियों से सत्ता संघर्ष में सिर्फ ढाल के रूप में उपयोग मात्र किया। बुद्धिजीवियों ने श्रमजीवियों को अंधेरे में रखने के लिये पाँच काम किये— (1) जोर-शोर से प्रचारित किया कि कृत्रिम ऊर्जा श्रम सहायक है, जबकि पूरी तरह सच्चाई यह है कि कृत्रिम ऊर्जा श्रम प्रतिस्पर्धी है, सहायक नहीं। (2) बुद्धि को रोजगार से जोड़ दिया, जबकि सच्चाई यह है कि रोजगार के मामलों में श्रम ही अतिरिक्त सहायता का पात्र है, बुद्धि नहीं। बुद्धिजीवियों ने श्रम को कमजोर करने के लिये शिक्षित बेरोजगार नामक एक नया शब्द तैयार कर दिया। (3) आम नागरिक नामक एक नया शब्द प्रचारित कर दिया। इससे बुद्धिजीवियों को भी श्रमजीवियों और गरीबों के साथ मिला देने में बहुत सुविधा हो गई। (4) श्रम मूल्य इतना बढ़ा दिया कि श्रम की मांग भी कम हो गई और बाजार मूल्य भी कम हो गया। (5) श्रमजीवियों को जाति के नाम पर बाँटकर दलित, आदिवासी और पिछड़ों के नाम पर ऐसी राजनीति की कि श्रमजीवी दलितों, आदिवासियों और पिछड़ों को भी बुद्धिजीवी दलितों, आदिवासियों और पिछड़ों के उत्थान में सुख का अनुभव होने लगा। श्रमजीवी दलित भी मायावती और पासवान के उत्थान में अपना उत्थान महसूस करने लगा। श्रमजीवी और बुद्धिजीवी का वर्ग विभाजन तो किनारे हो गया और जातिवादी आरक्षण आगे आ गया। श्रमजीवी व्यवस्था के भागीदार तो नहीं बन सकते, यह सच है। यदि कोई ऐसा आश्वासन भी दे तो वह गलत है क्योंकि परिवार और स्थानीय इकाई के ऊपर वास्तविक श्रमजीवी की उपयोगी भूमिका संभव नहीं और यदि कोई चला भी गया तो वह श्रमजीवी वर्ग से बुद्धिजीवी वर्ग में परिवर्तित हो जाता है। किन्तु श्रमजीवी वर्ग को गरीबी रेखा से तो तत्काल बाहर किया जा सकता है। श्रमजीवियों के श्रम का बाजार मूल्य तो बढ़ सकता है। आखिर कौन-सी मजबूरी है कि परमाणु बम बनाने और चाँद पर जाने तक की क्षमता रखने वाला भारत अपने श्रमजीवियों को न्यूनतम घोषित श्रम मूल्य की सीमा रेखा से ऊपर नहीं कर सकता या गरीबी रेखा को समाप्त नहीं कर सकता। यह काम तो बिल्कुल आसान काम है। भारत की वर्तमान व्यवस्था इन लोगों को खाद्यान्न सब्सिडी, शिक्षा पर खर्च और अनेक योजनाओं पर भारी-भरकम खर्च का नाटक भी तो कर रही है। फिर ये लोग क्यों नहीं इतना आसान काम करते? ये नहीं करेंगे क्योंकि ऐसा करने से तो श्रम के नाम पर श्रम शोषण का पूरा नाटक ही खत्म हो जाएगा, जो नाटक ये लोग अस्सी वर्षों से सफलतापूर्वक करते आ रहे हैं। बुद्धिजीवियों ने बहुत चालाकी से प्रत्यक्ष सहायता तथा श्रम शोषण के सिद्धान्तों को अर्थव्यवस्था का ही अंग बना दिया। परिणाम बहुत भयंकर हुआ। चार बातें साफ-साफ दिखने लगीं।

(1) ग्रामीण अर्थव्यवस्था चरमरा गई। श्रम की मांग और श्रम का अधिक मूल्य भी गांवों की अपेक्षा शहरों में केन्द्रित हुआ। गांव से बड़ी संख्या में आबादी का शहरों की ओर पलायन हुआ, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण शहरों में बनी नारकीय सुविधा युक्त झुग्गी-झोपड़ियाँ हैं।

(2) श्रम प्रधान कृषि अलाभकर और मशीन प्रधान कृषि लाभकर होने लगी। छोटे कृषि प्रयासों का बड़े कृषि प्रयासों में समाहित होना या बन्द होना साफ देखा जा सकता है। यही हाल श्रम प्रधान उद्योगों का हुआ।

(3) पूरे देश की औसत विकास दर आठ प्रतिशत है। इनमें से तैंतीस प्रतिशत गरीब श्रमजीवी ग्रामीण किसानों की औसत एक प्रतिशत, तैंतीस प्रतिशत मध्यम बुद्धिजीवी शहरी लोगों की आठ प्रतिशत और तैंतीस प्रतिशत ऊपर वालों की औसत पंद्रह प्रतिशत है, जबकि उल्टा होना चाहिए था।

(4) देश के सारे श्रमजीवी गरीबी रेखा से नीचे की श्रेणी में हैं। एक भी श्रमजीवी गरीबी रेखा से ऊपर नहीं है, यद्यपि कुछ बेरोजगार बुद्धिजीवी भी गरीबी रेखा के नीचे हैं।

इतने गंभीर और विनाशकारी परिणाम दिखने के बाद भी देश के मार्गदर्शक बुद्धिजीवी धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्रीयता, लिंग, उम्र, उत्पादक-उपभोक्ता जैसे विघटनकारी, भ्रमोत्पादक मुद्दों को आगे लाकर श्रम के महत्व को पीछे ढकेलने के लिये प्रयत्नशील हैं। ये लोग आर्थिक असमानता के विरुद्ध प्रत्यक्ष या परोक्ष संघर्ष न छेड़कर बालश्रम और कन्या भ्रूण हत्या के विरुद्ध आवाज उठाते रहते हैं, जबकि श्रम शोषण और आर्थिक असमानता बालश्रम और कन्या भ्रूण हत्या की अपेक्षा कई गुना अधिक विस्फोटक अन्याय है। मैंने एक सर्वेक्षण किया तो मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि भारत के कुल बजट में शहर की अपेक्षा गांव दस

गुना अधिक रेवेन्यू देता है, किन्तु वह धन शहर के खाते में जमा करके शहरी रेवेन्यू की मात्रा अधिक बताई जाती है। खेती की जितनी पैदावार होती है, उसका निन्यानवे प्रतिशत उत्पादन गांव से होता है, किन्तु शहरी व्यापारी उसका टैक्स इकट्ठा करता है और वह शहरी टैक्स बन जाता है। सम्पूर्ण वनोपज और खनिज भी ग्रामीण उत्पादन ही है। उत्पादन और ग्रामीण उपभोग की वस्तुओं पर टैक्स लगाकर शहरी टैक्स बताने का घपला लगातार भारत में चल रहा है। आज भारत में अनेक ऐसे नासमझ समाजसेवकों की बाढ़ आई हुई है जिनके कारण किसान आत्महत्या के नाम पर बड़े किसानों को फायदा पहुँच रहा है। खाद, बीज, बिजली के दाम घटाये जा रहे हैं और कर्ज माफ हो रहा है। इन चालाक लोगों ने बेरोजगारी के साथ शिक्षा शब्द जोड़कर श्रम शोषण का नया हथियार तैयार कर लिया है। ये लोग शिक्षा को प्रगति का आधार बता-बताकर शिक्षा पर अत्यधिक खर्च करवाने का भी प्रयत्न करते रहते हैं जबकि शिक्षा से अशिक्षित श्रमिक को कोई लाभ नहीं मिल सकता, जब तक वे शिक्षित न हों। इसके विपरीत शिक्षा ने श्रमिक शोषण अधिक किया है। सच्चाई यह है कि श्रम शोषण की सारी योजनाएँ बनाने वाले अधिकांश लोग शिक्षित ही हैं, अशिक्षित नहीं।

श्रम की प्रतिस्पर्धा तकनीक से है, यह सच होते हुए भी तकनीक विकास का मुख्य आधार है। न तो तकनीक को श्रम शोषण के लिये खुला छोड़ना उचित है, जैसा कि वर्तमान में हो रहा है और न ही तकनीक को बिल्कुल रोका जा सकता है, जैसा वर्तमान गांधीवादी मित्र मांग करते हैं। उचित मार्ग तो यही होगा कि श्रम को तकनीक से प्रतिस्पर्धा के पर्याप्त अवसर दिये जायें और तकनीक से प्राप्त लाभ का कुछ अंश श्रमजीवियों को सहायता के रूप में दिया जाये। बुद्धिजीवियों ने एक गुप्त षड़यंत्र के अन्तर्गत तकनीक को सुविधा प्रदान करने के लिये श्रम उत्पादित और श्रम उपभोग की वस्तुओं तक पर कर लगा दिया। यदि हम ऐसे सभी प्रकार के कर समाप्त कर दें तथा गरीबी रेखा के नीचे वालों को 2000 रुपये प्रति व्यक्ति प्रतिमाह की सब्सिडी दे दें और बदले में कृत्रिम ऊर्जा (डीजल, बिजली, पेट्रोल, मिट्टी तेल, कोयला, गैस) पर उतना ही कर बढ़ा दें जितना आवश्यक हो, तो बेरोजगारी भी पूरी तरह समाप्त हो सकती है और गरीबी रेखा भी एक बार में ही समाप्त हो सकती है। इस प्रयत्न से श्रम तकनीक से प्रतिस्पर्धा कर लेगा। इससे आवागमन इतना महंगा होगा कि ग्रामीण उद्योग बहुत विकास करेंगे। कृत्रिम ऊर्जा की मूल्य वृद्धि से श्रमिक खेती भी बढ़ेगी। साथ ही आवागमन महंगा होने के बावजूद उपभोक्ता वस्तुएँ सस्ती हो जाएँगी। क्योंकि कई तरह के टैक्स समाप्त हो जायेंगे। श्रम शोषण एक गंभीर समस्या है। श्रमजीवियों का व्यवस्था पर से विश्वास उठने लगा है। कुछ बुद्धिजीवी इस असंतोष को नक्सलवाद के रूप में हिंसक स्वरूप देने का प्रयास भी करते रहे हैं, जिसमें वे आंशिक रूप से सफल भी हुए थे। श्रमजीवी बुद्धिजीवियों के इस षड्यंत्र में पिस रहा है। श्रम शोषण रुकना आवश्यक है और यह तभी रुक सकता है जब बुद्धिजीवियों का एक वर्ग ईमानदारी से श्रम न्याय की दिशा में आगे बढ़े। यह काम कठिन भी है क्योंकि स्वार्थी बुद्धिजीवियों, पूँजीपतियों के गठजोड़ ने श्रमजीवी गरीब ग्रामीण तक के मन में कृत्रिम ऊर्जा को श्रम सहायक और शिक्षा प्रसार को गरीब विकास के लिये आवश्यक सिद्ध कर रखा है। यह भ्रम दूर करना कठिन होते हुए भी कोई दूसरा मार्ग नहीं है। हम सबको मिल-जुलकर इस दिशा में प्रयत्न करना चाहिए। हमें मिल-जुलकर श्रम शोषण मुक्ति अभियान के इस नारे पर गंभीर बहस छेड़नी चाहिए— "कृत्रिम ऊर्जा सस्ती हो, यह बहुत बड़ा षड़यंत्र है, श्रम का शोषण करने का यह पूँजीवादी मंत्र है।"

प्रश्नोत्तर

1. श्री महेश भाई, विजयीपुर, गोपालगंज, बिहार

प्रश्न- आज हम अर्थनीति के जिस मकड़जाल में उलझ गये हैं, उससे निकलने की कोई राह नहीं दिखती। जिन कारकों ने आर्थिक असंतुलन पैदा किया है, उनकी पहचान करना तथा निराकरण खोजना वर्तमान आर्थिक योजनाओं के बस की बात नहीं दिखती। कुल राष्ट्रीय आय का मकड़जाल वास्तविक श्रम मूल्य को ही निगल रहा है। वास्तविक श्रम मूल्य और कृत्रिम श्रम मूल्य का अन्तर कैसे दूर हो। वास्तविक श्रम मूल्य का निर्धारण कैसे किया जाये आदि ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न हैं, जिनका उत्तर खोजे बिना अर्थव्यवस्था की गाड़ी एक इंच भी आगे नहीं बढ़ सकती है। जिस स्तर पर कृत्रिम ऊर्जा की शक्ति की इकाई को अश्व शक्ति के रूप में मापित किया गया है, उसी प्रकार मानवीय श्रम का उचित और सम्मानजनक मूल्य दिलवाना संभव हो सका है। यह तभी संभव है जब भारत के आर्थिक विशेषज्ञों के साथ-साथ श्रमिकों को भी यह वास्तविकता समझ में आ जाये कि कृत्रिम ऊर्जा का हर उत्पादक इकाई पर आधिपत्य जमाना श्रम के लिये घातक है। जब तक कृत्रिम ऊर्जा का आकर्षण और वर्चस्व कायम रहेगा, तब तक वास्तविक श्रम मूल्य उपेक्षित रहेगा ही।

श्रम मूल्य तभी बढ़ेगा जब मांग बढ़ेगी और मांग तभी बढ़ेगी जब कृत्रिम ऊर्जा महंगी होगी। किन्तु यह तकनीक आम नागरिकों को समझाना कठिन कार्य है क्योंकि साइकिल पर टैक्स है, यह कोई नहीं जानता और न उसे जानने दिया जाता है, किन्तु कृत्रिम ऊर्जा की मूल्य वृद्धि का बहुत प्रचार किया जाता है। यहाँ तक तो मैं आपके कथन से अक्षरशः सहमत हूँ। किन्तु आपने श्रम प्रधान और बुद्धि प्रधान का पृथक-पृथक आकलन करके श्रम प्रधानों के अपेक्षाकृत अधिक उपयोग की वस्तुओं में अनाज, कपड़ा, दवा आदि को शामिल किया और बुद्धिजीवियों के अधिक उपयोग की वस्तुओं में कृत्रिम ऊर्जा को। यह आकलन पूरी तरह गलत या भ्रामक है। वास्तविकता यह है कि अनाज, कपड़ा, दवा आदि वस्तुएँ श्रमजीवी या बुद्धिजीवी पृथक-पृथक मात्रा में उपयोग नहीं करते हैं। इसी तरह पशुचारा या लघु वनोपज के उपयोग में भी श्रमजीवी-बुद्धिजीवी का अन्तर नहीं है। टेलीफोन भी आम उपयोग की वस्तु बन गई है। परदेश कमाने वाला अपने बच्चों से बात करने में टेलीफोन की ही सहायता लेता है। मेरे विचार में वस्तुओं का वर्गीकरण दो ही होना चाहिए— (1) जीवनोपयोगी आवश्यक वस्तुएँ (2) विलासिता की वस्तुएँ। विलासिता की वस्तुओं पर कर अधिक लगे और आवश्यक वस्तुएँ कर-मुक्त हों, इतनी सतर्कता ही पर्याप्त है।

उत्तर- आपने कृत्रिम ऊर्जा और श्रम की तुलना बहुत ही सूक्ष्म विवेचना से की है। यह हमारे लिये संतोष की बात है, किन्तु आपके दूसरे बिन्दु पर गंभीर विचार करने की आवश्यकता है। आय की दृष्टि से व्यक्ति तीन प्रकार के हैं — 1. श्रमप्रधान 2. बुद्धिप्रधान 3. धनप्रधान। जिस व्यक्ति की आय के मुख्य स्रोत सिर्फ शारीरिक शक्ति पर निर्भर हैं, उसे श्रमप्रधान कहते हैं। ऐसे व्यक्ति की सम्पूर्ण आय में श्रम की भूमिका निर्णायक और बुद्धि की आंशिक ही होती है। ऐसे व्यक्ति के पास आय का मुख्य स्रोत एक मात्र श्रम ही होता है और श्रम की अधिकतम आय एक हजार से कम ही होती है, जबकि बुद्धिप्रधान व्यक्ति के पास आय के दो साधन हो जाते हैं। वे बौद्धिक श्रम का विशेष और शारीरिक श्रम का सहायक प्रयोग करते हैं। ऐसे व्यक्ति की दैनिक आय एक हजार रुपये से प्रारंभ होकर पच्चीस हजार रुपये प्रतिदिन तक हो सकती है। अनेक डॉक्टर या वकील तो इससे अधिक भी प्रतिदिन कमाते हैं। तीसरे प्रकार के व्यक्ति को धनप्रधान कहते हैं। ऐसे व्यक्ति के पास श्रम, बुद्धि और धन तीनों ही आय में सहायक होते हैं। ऐसे व्यक्ति की आय की कोई सीमा नहीं होती क्योंकि उसके पास उपलब्ध धन उसकी आय में वृद्धि करता है। ऐसे व्यक्ति बहुत तीव्र गति से धन बढ़ाते जाते हैं। मेरा अपना अनुभव है कि श्रमप्रधान व्यक्ति की आय और व्यय बुद्धिप्रधान की अपेक्षा बहुत कम और सीमित होता है। अब हम उपभोग पर विचार करें तो यह पूरी तरह प्रमाणित है कि श्रमप्रधान व्यक्ति का भोजन बुद्धिप्रधान की अपेक्षा करीब पैंतीस प्रतिशत अधिक होता है। सरकारी नियमों में भी श्रमप्रधान को अनाज पाँच सौ पच्चीस ग्राम प्रतिदिन और बुद्धिप्रधान के लिये तीन सौ नब्बे ग्राम प्रतिदिन ही निर्धारित है। बुद्धिप्रधान व्यक्ति अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार अन्य कई वस्तुएँ खाकर इस अनाज की मात्रा को और कम कर लेता है, जबकि श्रमप्रधान कम नहीं कर पाता। अन्न की खपत पर और सूक्ष्म विश्लेषण किया गया तो पाया गया कि भारत में श्रमजीवियों की संख्या सत्तर प्रतिशत, बुद्धिजीवियों की बीस प्रतिशत और पूँजीपतियों की दस प्रतिशत है। उपरोक्त अनुमानों से स्वयं सिद्ध है कि भारत का श्रमजीवी अस्सी प्रतिशत अनाज उपभोग करता है और बुद्धिजीवी पंद्रह प्रतिशत। किन्तु टेलीफोन, रसोई गैस, आवागमन और कृत्रिम ऊर्जा के मामले में इससे ठीक विपरीत है। अतः मेरा आपसे निवेदन है कि अनिवार्य आवश्यकताओं की वस्तुओं और सुविधा की वस्तुओं में अन्तर करना शुरू करें। हम घोषणा करें कि अनिवार्य आवश्यक वस्तुओं पर किसी भी स्थिति में कोई कर नहीं होगा। सारा कर विलासिता की वस्तुओं पर होगा और यदि आवश्यक ही हुआ तो सुविधा की वस्तुओं पर लगाया जा सकता है। आवश्यक वस्तुओं पर नहीं। आपने कृत्रिम ऊर्जा पर हमारे दृष्टिकोण का भरपूर समर्थन किया है। दूसरे दृष्टिकोण को भी समझेंगे, ऐसी आशा है।

2. सूरज प्रसाद श्रीवास्तव, फेसबुक से

प्रश्नः- आपने श्रमशोषक की पहचान के पाँच सूत्र लिखे थे। आप इन सूत्रों को कुछ विस्तार से बताने की कृपा करें।

उत्तरः- श्रमशोषण के पाँच सूत्र इस प्रकार हैं—

1.भारत में स्वतंत्रता के बाद महंगाई निरंतर घटी है। सोना, चांदी, जमीन कई गुना अधिक महंगे हुए हैं, तो रोटी, कपड़ा तथा अन्य सभी उपभोक्ता वस्तुएँ सस्ती या बहुत सस्ती हुईं। स्वतंत्रता के बाद भारत में रुपये का मूल्य 225 रुपये के बराबर है। इस आधार पर महंगाई का हल्ला उपभोक्ता अपने हित में करते हैं, उत्पादक की समस्याओं की चिंता नहीं करते। किसान आत्महत्या करते हैं तो उपभोक्ताओं का जीवन स्तर ऊपर से ऊपर जा रहा है।

2.कृत्रिम ऊर्जा श्रम की प्रतिस्पर्धी है और बुद्धिजीवी पूँजीपतियों की सहायक। भारत का 33 प्रतिशत सम्पन्न व्यक्ति अपने उत्पादन और उपभोग में 70 प्रतिशत कृत्रिम ऊर्जा तथा 5 प्रतिशत मानवीय ऊर्जा का उपभोग करता है, तो 33 प्रतिशत गरीब ग्रामीण श्रमजीवी सिर्फ 5 प्रतिशत कृत्रिम ऊर्जा तथा 95 प्रतिशत मानवीय ऊर्जा। यदि गरीब ग्रामीण श्रमजीवियों को सब प्रकार के टैक्सों से मुक्त करके सारा टैक्स कृत्रिम ऊर्जा पर लगा दिया जाये तो भारत की सब प्रकार की समस्याएँ अपने आप सुलझ जाएँगी। पर्यावरण प्रदूषण घटेगा। शहरी आबादी गांव की ओर लौटेगी। विदेशी कर्जा कम होगा। आयात-निर्यात का संतुलन बनेगा और श्रम का मूल्य अपने आप बढ़ जायेगा। सरकार के पास इतना अतिरिक्त धन हो जायेगा कि

सरकार वह धन आम नागरिकों में बाँट भी सकती है।
3.श्रम की मांगवृद्धि श्रम मूल्यवृद्धि की पूरक है। श्रम की मांग बढ़ेगी तभी श्रम का मूल्य बढ़ेगा, किन्तु श्रम की मांग बढ़ाने की अपेक्षा हम तकनीक को सस्ता करके श्रमजीवियों को आर्थिक सहायता करना चाहते हैं क्योंकि बुद्धिजीवियों और पूँजीपतियों की मालिक और गुलाम या दाता और भिखारी की भावना बढ़ती जा रही है। मैं इसके विरुद्ध हूँ। गुलाम और मालिक या दाता और भिखारी की प्रवृत्ति बदलनी चाहिए। और उसका समाधान है श्रम और कृत्रिम ऊर्जा के बीच प्रतिस्पर्धा बढ़े।
4.आवागमन महंगा होना चाहिए क्योंकि आवागमन सस्ता होने से लघु उद्योग समाप्त होकर बड़े उद्योग बढ़ रहे हैं। मैं चाहता हूँ कि बड़े उद्योग विस्तार करें, किन्तु लघु उद्योगों को समाप्त करके नहीं बल्कि प्रतिस्पर्धात्मक तरीके से आगे बढ़ें।
5. एक सिद्धांत है कि किसी वस्तु का मूल्य बढ़ता है तो मांग घटती है। इस षड्यंत्र के अन्तर्गत ही लोग श्रम का मूल्य बढ़ाने की मांग करते हैं और सरकारें षड्यंत्र के अंतर्गत ही बढ़ाती भी हैं, जिसका परिणाम होता है कि समाज में दो प्रकार के श्रम मूल्य हो जाते हैं। मैं चाहता हूँ कि सरकार न्यूनतम श्रममूल्य इतना ही घोषित करे, जिस पर वह प्रत्येक व्यक्ति को रोजगार देने के लिए बाध्य हो। इसका अर्थ यह हुआ कि बाजार के श्रम मूल्य से अधिक की घोषणा वापस ले लेनी चाहिए। एक तरफ श्रममूल्य की स्वाभाविक वृद्धि में बाधा पैदा करना तो दूसरी ओर कृत्रिम श्रममूल्य बढ़ाने का प्रयास बुद्धिजीवियों का षड्यंत्र मात्र है।

3. प्रश्न- आपने शोषण के समाज पर दुष्प्रभाव को ही नकार दिया जबकि समाज में हर मजबूत कमजोर का शोषण करता दिखता है। क्या समाज का कर्तव्य नहीं कि वह कमजोर को ऐसे शोषण से बचावे?

उत्तर- किसी कमजोर को किसी मजबूत के आक्रमण से बचाना सरकार का काम होता है और शोषण से बचाना समाज का काम है, सरकार का नहीं। किसी भी प्रकार के आक्रमण में दूसरे पक्ष के मौलिक अधिकारों का हनन होता है, किन्तु शोषण में किसी के मौलिक अधिकारों का हनन न होकर सिर्फ सामाजिक अधिकारों का ही हनन होता है। यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य के मौलिक अधिकारों का हनन करे तो उस अपराधी के मौलिक अधिकारों पर राज्य आक्रमण या कटौती कर सकता है, किन्तु सामाजिक अधिकारों पर आक्रमण करने वाला व्यक्ति अपराधी या समाज-विरोधी न होकर सिर्फ असामाजिक ही होता है। आप उसे दण्डित नहीं कर सकते।

दूसरी बात यह भी विचारणीय है कि कमजोर व्यक्ति होता है, वर्ग नहीं। वर्ग गुण, कर्म, स्वभाव से बनना चाहिए, न कि वर्ग पहले और गुण, कर्म, स्वभाव बाद में। हजारों वर्षों से इसी भूल या चालाकी के कारण शोषण हुआ। अब नये वर्ग द्वारा नये तरीके से वैसी ही चालाकी की जा रही है। यह शोषण का समाधान नहीं है बल्कि शोषण करने वालों के चेहरे बदल जायेंगे।
हमसे भूल हो रही है कि—
(1) हम मूल अधिकार, सामाजिक अधिकार और संवैधानिक अधिकार का अन्तर नहीं समझ रहे, न हमें समझने दिया जा रहा है।
(2) हम अपराध, गैरकानूनी और अनैतिक का अन्तर नहीं समझ रहे।
(3) हम दायित्व और कर्तव्य के बीच का अन्तर नहीं समझ रहे।
सब धान बाईस पसेरी खरीदने की मूर्खता का स्वाभाविक परिणाम होगा कि धूर्त लोग रद्दी धान लाने को प्रोत्साहित होंगे, जैसा कि आज हो रहा है।

एक बात और विचारणीय है कि बिना अपनी क्षमता का आकलन किये कर्तव्य को दायित्व में बदलना घातक होता है। क्योंकि ज्यों ही आप किसी कार्य को दायित्व घोषित कर देते हैं, त्यों ही वह दायित्व दूसरे का अधिकार बन जाता है। आज राज्य चोरी, डकैती, आतंकवाद, भ्रष्टाचार, बलात्कार को तो रोक नहीं पा रहा और बेमतलब वेश्यावृत्ति, दहेज जैसे अनावश्यक कार्यों में हाथ डाल रहा है। बलात्कार एक अपराध है। उसे रोकना राज्य का दायित्व है। बलात्कार के अतिरिक्त बाकी मामलों में यौन सुरक्षा राज्य का दायित्व नहीं। रूपम पाठक के मामले में कहीं बलात्कार नहीं है जिसमें राज्य हस्तक्षेप करे। राज्य ने अनावश्यक यह कार्य लिया और उसके दुष्परिणाम आज समाज को भुगतना पड़ रहा है। राज्य की नासमझी का ही परिणाम है कि आज बलात्कार बढ़ रहे हैं। यदि राज्य यौन शोषण से स्वयं को दूर कर ले तो बलात्कार अपने आप कम हो जायेंगे। आज समाज में यौन तृप्ति के साधनों की मांग ज्यादा है और पूर्ति कम क्योंकि राज्य ने कानून बनाकर ऐसे साधनों पर रोक लगा रखी है। उसका परिणाम है छीना-झपटी। अति उच्च आदर्श घोषित करना, जो क्षमता से बहुत दूर है, या तो मूर्खता है या धूर्तता। राज्य धूर्तता कर रहा है या मूर्खता, यह अलग से विचारना होगा, किन्तु राज्य समझदारी नहीं कर रहा, इतना तय है।

4. श्री वी. मित्तल, अचल कोठी, अलीगढ़

प्रश्न- ''यौन शोषण शब्द के घातक परिणाम'' शीर्षक से आपने एक पक्षीय विचार रखे हैं। मेरे विचार अनुसार शोषण एक क्रिया है। जब तक वह प्रयत्न तक सीमित है, तब तक वह अपराध नहीं, किन्तु ज्यों ही वह क्रिया में बदलती है, त्यों ही अपराध बन जाती है। शोषण कई प्रकार के होते हैं जैसे बच्चों के दाखिले के समय अत्यधिक फीस लेकर अभिभावकों का शोषण, डॉक्टर द्वारा अधिक फीस लेकर मरीजों का शोषण, वस्तुओं के दाम बढ़ाकर उपभोक्ताओं का शोषण आदि। इसी तरह यौन शोषण भी होता है। कल्पना करिये कि एक वरिष्ठ अधिकारी ने एक कनिष्ठ महिला अधिकारी का ट्रांसफर दूरस्थ स्थान पर

करके यौन शोषण के समझौते बाद उसका ट्रांसफर रोक दिया। इस यौन शोषण में न महिला की सहमति है, न तृप्ति की इच्छा। यह तो स्पष्ट रूप से उसकी मजबूरी है। किसी की मजबूरी का लाभ उठाकर उसे यौन तृप्ति के समझौते तक ले जाना और उस समझौते को क्रिया में बदलना अपराध मानना चाहिए। आधुनिक युग में यौन शोषण हो रहा है, मर्यादाएँ टूट रही हैं, पारिवारिक रिश्ते महत्व खो रहे हैं। ऐसे समय में यौन शोषण को नकारना उचित प्रतीत नहीं होता।

उत्तर- मैंने न शोषण के अस्तित्व से इनकार किया है, न ही उसे रोकने की आवश्यकता से। मैंने उक्त लेख में यह वाक्य लिखा है— "किसी भी प्रकार का शोषण कोई अपराध नहीं होता क्योंकि शोषण में न कहीं बल प्रयोग होता है, न जालसाजी, धोखाधड़ी। शोषण किसी मजबूरी से लाभ उठाने के प्रयत्न का नाम है जो असामाजिक तो हो सकता है, किन्तु समाज-विरोधी कार्य नहीं अथवा जो अनैतिक तो हो सकता है, किन्तु अपराध नहीं। दुर्भाग्यवश हमारे अच्छे-अच्छे लोग भी असामाजिक और समाज-विरोधी या अनैतिक और अपराध या गैरकानूनी और अपराध का अन्तर नहीं समझ पाते और यह नासमझी ही उन्हें भी भ्रमित करती रहती है, जिस भ्रम का दुष्प्रभाव सम्पूर्ण समाज पर पड़ता है।"

इसी तरह मैंने लिखा है कि "सिर्फ महिलाओं का ही शोषण नहीं होता।" समाज में हर कमजोर का हर मजबूत के द्वारा शोषण होता है, किन्तु शोषण रोकना सरकार का काम नहीं है, समाज का काम है। सरकार शोषण रोकने का अनावश्यक काम जिम्मे ले रही है। उसके पास अभी जितने दायित्व हैं, वही उसके संभाले नहीं संभल रहे, तो सरकार क्यों अनावश्यक वजन उठावे। दूसरी ओर यह बात भी उतनी ही सत्य है कि हर कमजोर की सहायता भी हर मजबूत ही करता है। समय-समय पर महिलाओं की सहायता के लिए पुरुष आगे आते रहे हैं। इतिहास ऐसी घटनाओं से भरा पड़ा है। धूर्त लोग शोषण की बात समाज में वर्ग विद्वेष पैदा करने के लिये ही उठाते रहते हैं। गिलास आधा भरा है कि आधा खाली, इस विवेचना में विवेचना करने वाले की नीयत ही विवेचना के निष्कर्ष को प्रभावित करती है। सत्य तो अपनी जगह पर एक ही है।" मेरे और आपके बीच अन्तर अपराध शब्द का है। मैं शोषण को अनैतिक और असामाजिक मानता हूँ, अपराध नहीं, जबकि आप अपराध मानते हैं। मैं शोषण रोकना समाज और धर्म का काम मानता हूँ, सरकार का नहीं, जबकि आप सरकार का मानते हैं। मेरा मानना है कि किसी भूखी महिला को पैसा देकर उसे यौन तृप्ति के लिये सहमत करना अपराध नहीं, आप अपराध मानते हैं। मेरी राय में किसी स्कूल में मनमानी फीस लेना भी शोषण तो है, किन्तु अपराध नहीं। आपने एक महिला के ट्रांसफर की बात कही। मेरे विचार में तो वह सहमति मात्र है। कोई वेश्या पैसे लेकर यौनार्पण करती है तो कोई अपना ट्रांसफर रुकवाने के लिये। वह अफसर उस महिला से यौन तृप्ति के बदले धन भी मांग सकता था। न धन मांगना अपराध था, न यौन तृप्ति पर सहमति। यदि वह सरकारी अफसर है तो वह भ्रष्टाचार है जो गैरकानूनी तो है, किन्तु अपराध नहीं।

आप विचार करिये कि पिछले सत्तर वर्षों से समाज में बलात्कार भी बढ़ रहे हैं और हिंसा भी। बलात्कार और हिंसा आपकी नजर में भी अपराध हैं और मेरी नजर में भी। फिर भी इनके लगातार बढ़ते जाने का एक ही कारण है कि हमारे नासमझ नेताओं ने अनैतिक, असामाजिक को भी अपराध कहना शुरू कर दिया। इतने वर्ष बीतने के बाद भी धूर्त लोग दिन-रात इन गलत परिभाषाओं को प्रचारित करते रहते हैं और हम अज्ञानवश इन परिभाषाओं को ढोते रहते हैं। किसी के साथ मानवीय व्यवहार करना हमारा कर्तव्य तो हो सकता है, किन्तु उसका अधिकार नहीं। यह मामूली-सी बात भी हमारे संविधान निर्माता और राजनेता आज तक नहीं समझ सके, तो दोष किसका। आज आखिर मेरी भी तो मजबूरी है कि मैं आज ज्ञान तत्व के माध्यम से समाजशास्त्र का क, ख, ग, घ शुरू कर रहा हूँ। मेरा आपसे निवेदन है कि आप बलात्कार और यौन शोषण को अलग-अलग करिये। शोषण रोकने का काम समाज के जिम्मे डालिये और हिंसा, बलात्कार, मिलावट रोकना सरकार के जिम्मे। हम यौन शोषण की अन्देखी करके भी बलात्कार-मुक्त समाज बनाने की पहल कर सकते हैं, किन्तु बलात्कार की अन्देखी करके यौन शोषण की चिन्ता नहीं कर सकते। विषय अत्यन्त गंभीर है और कठिन है। साठ-पैंसठ वर्षों से जारी एक पक्षीय प्रचार को मैंने चुनौती दी है। आप सब पाठकों से अपेक्षा है कि आप इस विचार-मंथन में और वैचारिक आहुति दें।

05. श्रीमती आरती चक्रवर्ती, कलकत्ता, पश्चिम बंगाल

प्रश्न - महिलाओं के संबंध में आपके विचार कुछ पुरुषों के पक्ष में झुके हुए दिखे। प्राचीन समय में आय के साधन इकट्ठे करने में पुरुष ही पर्याप्त हुआ करते थे। महिलाएँ घर का काम भी करती थीं और आराम भी करती थीं। पुरुष बाहर जाकर मनोरंजन कर आते थे। किन्तु आज हालत बिल्कुल बदल गई है। आज तो हालत यह है कि महिलाओं को भी आय के साधन जुटाने में शामिल होना उसकी मजबूरी है। अन्यथा घर का खर्चा ही नहीं चलेगा। मुझे स्वयं भी सरकारी नौकरी मजबूरी में करनी पड़ी है। दिन भर काम करके घर में घर का भी काम करना क्या अन्याय नहीं है? क्या इस अन्याय को रोकने के लिये कोई नियम नहीं बनना चाहिए? यदि महिलाएँ भी पुरुषों के समान ही बच्चों की चिन्ता न करें तो बच्चों का भविष्य क्या होगा, यह भी आप सबने सोचा है? गंभीरतापूर्वक सोचकर कुछ नियम बनाने का प्रयास करें।

उत्तर – आपका पत्र उदाहरण मात्र है। ऐसे पचासों पत्र प्राप्त हुए हैं, जिनमें महिलाओं के शोषण को चित्रित किया

गया है। मैं भी पहले ऐसा ही सोचा करता था, किन्तु अनुसंधान के बाद जब निष्कर्ष निकले और उन निष्कर्षों के आधार पर महिलाओं की स्थिति को कसौटी पर कसा गया, तो पूरा निष्कर्ष ही बदल गया। निम्न निष्कर्षों पर विचार करने की आवश्यकता है—

1.संगठन सर्वदा मजबूतों से सुरक्षा तथा कमजोरों का शोषण करते हैं।

2.शोषण अपराध नहीं होता, अनैतिक होता है। अनैतिक कार्यों की रोकथाम सामाजिक समस्या है, प्रशासनिक नहीं। प्रशासन को नैतिकता-अनैतिकता में कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। प्रशासन को अपराध-नियंत्रण की सीमा-रेखा से आगे नहीं बढ़ना चाहिए।

3.महिलाओं का कोई पृथक वर्ग या संगठन नहीं हो सकता। चार इकाइयाँ अचल हैं, और तीन सचल। व्यक्ति, परिवार, गाँव और समाज अचल हैं तथा जिला, प्रान्त और राष्ट्र सचल। इन सभी इकाइयों में तोड़-फोड़ करके कोई वर्ग या संगठन नहीं बनाया जा सकता।

4.प्रत्येक परिवार अपनी क्षमता और आवश्यकताओं के बीच तालमेल बनाकर आय के प्रयत्न करता है। प्रत्येक परिवार की न्यूनतम आवश्यकताओं का मापदण्ड भिन्न-भिन्न होता है। समाज द्वारा भी न्यूनतम आवश्यकताओं का एक मापदण्ड बनाया जाना चाहिए। यह मापदण्ड इस आधार पर होना चाहिए कि किसी भी देश की कुल आबादी के पाँच प्रतिशत से अधिक लोग उसमें न शामिल हों। उससे अधिक का मापदण्ड कमजोर लोगों के लिये अन्याय का आधार होता है। भारत की वर्तमान स्थिति में न्यूनतम आवश्यकताओं की अधिकतम सीमा-रेखा प्रति व्यक्ति चौबीस हजार रुपये वार्षिक ही हो सकती है, अर्थात् पाँच व्यक्तियों के एक परिवार के लिये दस हजार रुपये मासिक। इससे अधिक की मांग करने वाले कमजोर वर्ग की कीमत पर अपनी सुविधाओं की चिन्ता करने के अपराधी हैं।

5.प्रवृत्ति व्यक्ति का व्यक्तिगत स्वभाव होता है, वर्ग का नहीं। पुरुष अत्याचारी होता है, यह कहना बिल्कुल गलत है।

6. सम्पूर्ण भारत की वर्तमान व्यवस्था पूँजीपतियों तथा बुद्धिजीवियों द्वारा श्रम और धनहीनों का शोषण करने का षड्यंत्र मात्र है, जो संगठन की सहायता से अपना उद्देश्य पूरा करती है।

उपरोक्त निष्कर्षों के आधार पर यह स्पष्ट है कि परिवारों में महिलाओं को शक्ति तभी मिल सकती है, जब समाज में पुरुष-प्रधान व्यवस्था को समाप्त करके व्यवस्था का कोई नया स्वरूप बने। मेरे विचार में परिवार के पारिवारिक मामलों में कानून का कोई हस्तक्षेप उचित नहीं। जब से भारतीय संविधान ने हिन्दुओं में पारिवारिक मामलों में हिन्दू कोड बिल बनाकर प्रवेश और हस्तक्षेप किया है, तब से हिन्दुओं में जलने-जलाने की घटनाएँ बहुत बढ़ी हैं, जबकि मुसलमानों में नहीं बढ़ी। किसी धर्म या जाति की आन्तरिक कुरीतियों में शासकीय हस्तक्षेप सदा ही घातक होता है। यदि रोजगार में लगी महिलाओं की पारिवारिक कठिनाइयों की चर्चा करें, तो पति-पत्नी दोनों नौकरी करें या दोनों न करें, यह उनका पारिवारिक मामला है। भारत में आज ऐसी स्थिति एक प्रतिशत से अधिक नहीं। बल्कि पाँच-दस प्रतिशत तक ऐसे भी लोग हो सकते हैं जहाँ पति-पत्नी दोनों ही बेरोजगार हों। अतः मेरे विचार में पारिवारिक मामलों में शासन को कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

नई समाज व्यवस्था

1 समाज की व्यापक अवधारणा

हम समाज शब्द पर चर्चा कर रहे हैं। समाज का अर्थ होता है मानव समाज अथवा विश्व मानव समाज अथवा सर्व व्यक्ति समूह। समाज का इसके अतिरिक्त कोई अन्य अर्थ नहीं हो सकता। समाज के अंदर पशु, पक्षी, जीव-जंतु, पेड़-पौधे यह सब शामिल नहीं होते क्योंकि इन सबको कोई मौलिक अधिकार घोषित नहीं है। इन्हें संवैधानिक अधिकार ही हो सकते हैं। मनुष्य को मौलिक अधिकार प्राप्त हैं। समाज का अर्थ न कोई जाति है, न कोई राष्ट्रीयता है, न कोई क्षेत्रीयता है, न कोई लिंग-भेद है। समाज में इस तरह का कोई भेद नहीं होता। समाज पूरे 7:30 सौ करोड़ व्यक्तियों का समूह माना जाता है। समाज को ही हम विश्व परिवार कह सकते हैं। इस तरह हमारा दृष्टिकोण बहुत व्यापक होना चाहिए। हम एक व्यक्ति हैं, हम किसी परिवार के सदस्य हैं, हम किसी देश के नागरिक हैं, लेकिन हम संपूर्ण विश्व समाज के भी सदस्य हैं। हमें यह स्वीकार करना चाहिए। व्यक्ति, परिवार या राष्ट्र अंतिम इकाई नहीं है। इसलिए हमारा दृष्टिकोण बहुत व्यापक होना चाहिए। जो लोग धर्म को अंतिम इकाई मानते हैं, वे गलत हैं। अंतिम इकाई तो विश्व समाज ही मानी जानी चाहिए।

2 सामाजिक एकजुटता की ओर बढ़ते कदम

हम सब वर्तमान समय में सिर्फ एक दिशा में सक्रिय हैं कि समाज को एकजुट होना चाहिए। सामाजिक एकजुटता में सबसे अधिक परेशान राजनीतिक नेता होते हैं क्योंकि राजनीतिक नेताओं के लिए सामाजिक एकता बहुत

अधिक घातक होती है। इसलिए वे विभिन्न तरीकों से समाज में वर्ग-विद्वेष बढ़ाकर वर्ग-संघर्ष का सहारा लेते हैं। लेकिन हम सरकार की इन सारी चालाकियों को किनारे करते हुए सामाजिक एकता का पक्ष लगातार मजबूत कर रहे हैं। धीरे-धीरे इस तरह की सर्व समाज एकता में जुड़ने वाले लोगों की संख्या बढ़ रही है। हम जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र, लिंग, गरीब, अमीर, किसान, मजदूर, भारतीय, विदेशी या अन्य किसी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं कर रहे। हम हर व्यक्ति को सामाजिक मान रहे हैं। हम सिर्फ यह प्रयत्न कर रहे हैं कि जो समाज के बनाए गए नियमों के विरुद्ध आचरण करता है, उन सबको छोड़कर बाकी सब लोगों को एकजुट कर दिया जाए। हमारा यह मानना है कि चाहे व्यक्ति एक नंबर का हो या दो नंबर का हो, यदि वह तीन नंबर के कार्य नहीं कर रहा है तो वे सब हमारे साथ जुड़ सकते हैं। इस तरह हम सर्व समाज नामक एक नई इकाई बना रहे हैं। हमारी इस इकाई को देश भर में जिस तरह समर्थन मिल रहा है, वह भी अभूतपूर्व है। इस सर्व समाज इकाई का पहला प्रांतीय सम्मेलन अयोध्या में 25 और 26 जुलाई को हो रहा है। इसी तरह देश भर के अन्य स्थानों पर भी सम्मेलन किए जाएंगे। हम जातिवाद, सांप्रदायिकता, क्षेत्रवाद, लिंगवाद का विरोध न करके, हम इन सब बीमारियों से मुक्त समाज-रचना का कार्य कर रहे हैं। हमें गायत्री परिवार, आर्य समाज, सर्वोदय, संघ परिवार के लोगों का अच्छा समर्थन मिल रहा है।

3 अपराधमुक्त समाज के लिए वैचारिक सतर्कता

वर्तमान भारत में हम समाज के लोग सिर्फ अपराधियों से ही परेशान नहीं हैं, बल्कि हमारे बीच में घुसे हुए ऐसे अपराधियों के पक्ष के लोग भी हमें भ्रमित करते हैं। ऐसे लोग मानवाधिकार के पक्षधर हो जाते हैं, ऐसे लोग न्याय के पक्षधर हो जाते हैं, जबकि इनका न मानवाधिकार से कोई लेना-देना है, न न्याय से कोई लेना-देना है। अभी-अभी कुछ दिन पहले मध्य प्रदेश का एक खतरनाक डकैत जगन गुर्जर राजस्थान की किसी जेल में अवैध तरीके से मारा गया। जगजाहिर है कि वह राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश के सीमावर्ती इलाकों में आतंक मचाकर रखा था। कोई भी मानवाधिकारवादी उस डकैत और अपराधी के खिलाफ कभी एक शब्द भी नहीं बोलता था, बल्कि हमेशा इस प्रकार के मानवाधिकारवादी सरकार की ही आलोचना करते थे कि आप उस डकैत को नहीं रोक पा रहे हैं। लेकिन जब वह डकैत अवैध तरीके से राजस्थान में मारा गया, तब ये अपराधियों के मददगार अब घड़ियाली आँसू बहा रहे हैं। बेचारा निहत्था था, उसे जेल में मार दिया गया। जरूर कोई-न-कोई सरकार की योजना रही होगी। वह तो बेचारा दीन-दुखियों की सेवा करता था। वह तो बेचारा जो माल लूटता था, वह लोगों में बाँट देता था। इस प्रकार अपराधों के पक्षधर जिस तरह जगन गुर्जर के लिए आँसू बहा रहे हैं, इस प्रकार के लोगों का सामाजिक बहिष्कार होना चाहिए। अपराधों में नियंत्रण के लिए अपराधियों के सफेदपोश पक्षकारों से भी हमें सावधान रहना चाहिए।

4 व्यक्ति, समाज और तंत्र का वास्तविक संबंध

दुनिया में व्यक्ति और समाज प्राकृतिक इकाइयाँ हैं। व्यक्ति सबसे पहली इकाई है और समाज सबसे अंतिम। दोनों के अपने-अपने स्वतंत्र अधिकार भी होते हैं और दोनों एक-दूसरे के साथ जुड़े हुए भी होते हैं। दोनों एक-दूसरे के पूरक होते हैं और एक-दूसरे पर निर्भर होते हैं। दोनों ही इकाइयों ने मिलकर व्यवस्था के रूप में एक तंत्र का निर्माण किया है। तंत्र के दायित्व क्या होंगे और उसकी सीमाएँ क्या होंगी, यह सब कुछ समाज एक संविधान के माध्यम से तंत्र को देता है। इस तरह तंत्र का कार्य संविधान के दिए गए आदेश के अनुसार पालन करना होता है। समाज संविधान के माध्यम से तंत्र को सलाह नहीं देता, बल्कि आदेश देता है और तंत्र उसके पालन के प्रति जिम्मेदार माना जाता है। संविधान बनाने वालों ने बहुत गलती की कि संविधान में धारा 35 से 51 तक जोड़ दी, जो वास्तव में तंत्र के लिए सलाह मात्र है। इन धाराओं ने तंत्र के दायित्व तो कम कर दिए, उल्टा तंत्र को समाज के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप के अवसर दे दिए। यह धारा 35 से 51 तक इसके लिए दोषी है कि तंत्र इन्हीं के माध्यम से समाज को गुलाम बनाने का प्रयास करता है। हमारा दुर्भाग्य है कि बाद में तो संविधान में मूल कर्तव्य भी जोड़ दिए गए। भारत में ऐसे-ऐसे नासमझ हैं, जो मूल कर्तव्य संविधान में जोड़ते भी हैं और उनसे सहमत भी हैं। इन नासमझों को समझदार बनने की जरूरत है। संविधान में जनकल्याणकारी कार्य और मूल कर्तव्य जैसी सभी धाराओं को तुरंत निकाल देना चाहिए या उन्हें बाध्यकारी बना दिया जाए।

5 नई समाज व्यवस्था में विवाह की नई अवधारणा

हम नई समाज व्यवस्था में विवाह के चार उद्देश्य बनाकर चलेंगे। पहला, शारीरिक इच्छा-पूर्ति। दूसरा, संतान उत्पत्ति। तीसरा, सह-जीवन की ट्रेनिंग। और चौथा, बुजुर्ग ऋण-मुक्ति। इन चारों उद्देश्यों की एक साथ पूर्ति को सफल विवाह माना जाएगा। विवाह के लिए हम तीन बातों को मिलाकर आदर्श विवाह मानेंगे। पहला, वर-वधू की स्वीकृति। दूसरा, परिवार की सहमति। और तीसरा, समाज की अनुमति। यदि ये तीनों बातें एक साथ नहीं होंगी, तो हम उसे आदर्श विवाह नहीं समझेंगे। यद्यपि हम वर-वधू की स्वीकृति मात्र से होने वाले विवाह को भी अमान्य नहीं

करेंगे, लेकिन हम उसे सामाजिक स्वीकृति नहीं मानेंगे। इसीलिए हम ऐसी विवाह पद्धति बनाएँगे, जिसमें तीनों का संतुलन हो और इसी पद्धति को हम प्रोत्साहित करेंगे। हम विवाह के मामले में सरकार के किसी कानून को अनावश्यक मानते हैं। कोई भी विवाह ग्राम सभा के पास ही रजिस्टर्ड होगा, सरकार के पास नहीं। इस तरह हम विवाह, संतान उत्पत्ति, विवाह-विच्छेद अर्थात तलाक, इन सबको सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत लेंगे, कानूनी पचड़े से दूर कर देंगे।

6 व्यक्ति, समाज और राज्य का वास्तविक संबंध

इस बात पर गहराई से चिंतन कर रहे हैं कि व्यक्ति और समाज, ये सिर्फ दो ही मौलिक इकाइयाँ हैं, जो प्राकृतिक हैं। बाकी बीच की सभी इकाइयाँ व्यक्ति और समाज ने मिलकर बनाई हैं और ये व्यवस्था की इकाइयाँ हैं। राज्य समाज का मैनेजर है या प्रतिनिधि है या संरक्षक है, इस बात पर गंभीरता से सोचा जाना चाहिए। कोई भी एक इकाई संरक्षक, प्रतिनिधि और मैनेजर, ये तीनों एक साथ नहीं हो सकती, क्योंकि यदि मैनेजर और संरक्षक एक ही व्यक्ति होंगे, तो फिर समाज गुलाम बन जाएगा, जो समाज का उद्देश्य नहीं है। इसलिए हम वर्तमान समय में गंभीरता से इस बात पर चिंतन कर रहे हैं कि यदि समाज बहुत बड़ी इकाई होने के कारण स्वयं भौतिक रूप से मालिक की भूमिका में नहीं रह सकता, तब ऐसी कौन-सी व्यवस्था बनाई जा सकती है, जो समाज के प्रतिनिधि के रूप में मैनेजर के कार्यों की समीक्षा करे। इस प्रतिनिधि को ही पावर ऑफ अटॉर्नी कहा जाता है। हम उसे संरक्षक तो नहीं कह सकते, लेकिन प्रतिनिधि कह सकते हैं। ऐसी व्यवस्था बननी आवश्यक है। जब तक ऐसी व्यवस्था नहीं बनती, तब तक राज्य अपने को मैनेजर और संरक्षक दोनों मान रहा है। राज्य अपने को प्रतिनिधि भी मान रहा है। यह कैसे संभव है कि राज्य समाज का प्रतिनिधि भी हो जाए, कस्टोडियन भी हो जाए और मैनेजर भी हो जाए? इसलिए हम चाहते हैं कि इस विषय पर गंभीरता से चर्चा की जाए और कोई नया तरीका खोजा जाए। यह सिर्फ भारत का प्रश्न नहीं है, दुनिया के लोकतंत्र के सामने एक नई चुनौती है।

7 अयोध्या से नई समाज व्यवस्था का संदेश

अयोध्या में दो दिनों तक लोक व्यवस्था जागरण अभियान के बैनर तले नई समाज व्यवस्था के प्रारूप, उसका तरीका और उसकी शुरुआत विषय पर गंभीर चर्चा भी हुई और योजना भी बनी। इस सारी योजना में आर्य समाज, गायत्री परिवार, आचार्यकुल, सर्वोदय, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ सहित अनेक संस्थाओं के प्रमुख लोगों ने भाग लिया। सबने मिलकर यह आवश्यकता महसूस की कि दुनिया ठीक दिशा में नहीं चल रही है और उसकी कार्य-प्रणाली में महत्वपूर्ण सुधार की आवश्यकता है। यह भी समझा गया कि राजनीतिक व्यवस्था इस बदलाव में बहुत बड़ी बाधा है। हमें राजनीतिक व्यवस्था को एक बीमारी मानकर उसका इलाज करने की जरूरत है और सामाजिक व्यवस्था में आई बुराइयों को हम सुधार करके ठीक कर सकते हैं। राजनीतिक व्यवस्था के लिए हमें दवा की जरूरत पड़ेगी और सामाजिक सुधार को हम टॉनिक के रूप में उपयोग कर सकते हैं। इन दोनों दिशाओं में समाज को एकजुट होकर कार्य करना चाहिए। लोक व्यवस्था जागरण अभियान का यह अयोध्या का सम्मेलन काफी सफल रहा। आगे अन्य स्थानों पर भी ऐसे ही सम्मेलन करने की योजना बनी है। मैं अयोध्या के इस कार्यक्रम की सफलता के लिए अपने सभी साथियों को धन्यवाद देता हूँ।

मुनि जी की विविध विषयों पर लेख

विवाह, तलाक और सामाजिक संतुलन: कानूनों पर पुनर्विचार की आवश्यकता

मैं बार-बार लिखता रहा हूँ कि अनेक समस्याएँ सरकार के अनावश्यक हस्तक्षेप का बाय-प्रोडक्ट हैं। सरकार यदि किनारे हो जाए, तो ये समस्याएँ अपने आप समाप्त हो जाएँगी। आजकल दिन-रात इस प्रकार की चर्चाएँ सामने आ रही हैं कि किसी महिला ने अपने पति को धक्का देकर मार दिया, किसी महिला ने अपने पति को नींद की गोली देकर मार दिया, किसी पति ने अपनी पत्नी की गर्दन काट दी, किसी पति ने अपनी पत्नी का गला घोंट दिया, किसी पति ने अपनी पत्नी को धोखा दे दिया। इस तरह की घटनाएँ दिन-रात सामने आती हैं, जिनमें पति-पत्नी के आपसी विश्वास पर कलंक लगता है। इसके अतिरिक्त भी अनेक घटनाएँ बलात्कार की आती हैं, अनेक घटनाएँ धोखाधड़ी की आती हैं, जिनमें पत्नी अपने पति को धोखा देती है या पति अपनी पत्नी को धोखा देता है। इन सारी घटनाओं का कारण है कि आपने विवाह की उम्र बढ़ा दी, आपने तलाक को कठिन कर दिया, आपने बलात्कार को बहुत अधिक गंभीर अपराध बना दिया। मैं लंबे समय से लिखता रहा हूँ कि ये सारे प्रयास गलत हैं। आप बलात्कार

की परिभाषा बदलें। मैं मानता हूँ कि आपने बाल विवाह को इसलिए रोका कि जन्म दर कम हो, लेकिन अब जन्म दर की समस्या समाप्त हो गई है। अब बाल विवाह कानून समाप्त कर दीजिए। तलाक को स्वतंत्र कर दीजिए, दहेज कानून हटा दीजिए। इस प्रकार के कानून यदि आप समाप्त कर देंगे, तो पति-पत्नी के बीच दिन-रात होने वाली टकराव की घटनाएँ अपने आप कम हो जाएँगी। मेरा स्पष्ट मत है कि सरकार को सिर्फ संविधानशास्त्र ही नहीं, समाजशास्त्र पर भी राय लेनी चाहिए। सामाजिक नियम बनाने के लिए कानून की तुलना में समाजशास्त्रियों का महत्व अधिक है।

कृषि नीति पर उपभोक्तावाद का दबाव

भारत में स्वतंत्रता के बाद जो तेज गति से भौतिक विकास हो रहा है उसकी तुलना में किसानों का विकास बहुत कम हो रहा है। यहाँ तक कि आत्महत्याओं के मामले में भी किसान ही सबसे अधिक आगे हैं। श्रम का मूल्य अपेक्षाकृत बढ़ा है लेकिन कृषि उत्पादन का मूल्य कम हुआ है। इसका प्रमुख कारण है कि भारत उपभोक्तावाद पर आगे बढ़ रहा है। उत्पादकों का महत्व नहीं है। उपभोक्ताओं की सभी राजनीतिक दल बहुत चिंता करते हैं इसलिए कृषि उत्पादन के भी मूल्य नहीं बढ़ने दिए जाते। अभी-अभी आपने देखा होगा कि किसान की उन्नति के लिए चार कृषि कानून बनाए जा रहे थे लेकिन उपभोक्ताओं के दबाव के कारण वे कानून भी सरकार ने वापस ले लिए। अब डीजल-पेट्रोल के जगह एथेनॉल का उपयोग बढ़ाने की योजना बनी। किसानों को कुछ उम्मीद हुई कि अब कृषि उत्पादन के दिन फिरेंगे। अब कृषि उत्पादन से गाड़ियाँ चलेंगी। लेकिन स्वार्थी तत्व अब एथेनॉल उत्पादन पर भी अनेक प्रकार के प्रश्न खड़े करके किसानों के साथ छल करना शुरू कर चुके हैं। यदि गाड़ियों का माइलेज थोड़ा-सा घट जाएगा तो इससे कुछ नुकसान होने वाला नहीं है लेकिन यह विदेशी एजेंट और किसान विरोधी लोग यह चाहते हैं कि हम विदेशी तेल का आयात करते रहें, हम भारतीय किसानों का शोषण करते रहें। सरकार भी इस तरह के दबाव में आ जाती है। हम चाहते हैं कि अधिक से अधिक एथेनॉल का उपयोग किया जाए जिससे विदेशी आयात घटे और भारतीय किसानों का भी भला हो। हमें खुलकर विदेशी एजेंटों का विरोध करना चाहिए।

न्यायिक प्रक्रिया पर पुनर्विचार का समय

मैं लंबे समय से लिखता रहा हूँ कि भारत का संविधान भी पश्चिमी देशों की नकल करके बनाया गया और भारत की न्याय व्यवस्था में भी पश्चिम की नकल की गई। आज तक हम ऐसे नकली लोकतंत्र को लेकर निरंतर आगे बढ़ रहे हैं, जो वास्तव में नकली है।सोनम रघुवंशी मामले ने यह बात उजागर कर दी है कि हमें अपनी न्यायिक प्रणाली पर गंभीरता से विचार करना चाहिए। अपराधी ने खुद अपराध स्वीकार किया है, अपराधी ने सारे प्रमाण उपलब्ध कराए हैं। हमारी कार्यपालिका ने यह प्रमाणित कर दिया है कि सोनम अपराधी है। इसके बाद भी न्यायपालिका द्वारा अपराधी को रियायत देना यह सिद्ध करता है कि दोष न्यायाधीशों में नहीं है, न्यायपालिका में नहीं है, बल्कि हमारी न्यायिक प्रक्रिया में है।यह सिद्धांत ही गलत है कि चाहे 99 अपराधी छूट जाएँ, एक भी निरपराध दंडित न हो, क्योंकि किसी अपराधी का निर्दोष घोषित हो जाना स्वयं में एक अन्याय है। इसलिए हमारे भारतीय सिद्धांत को लागू किया जाना चाहिए। न कोई अपराधी छूटे, न कोई निर्दोष दंडित हो। इसके लिए हम न्यायपालिका में आमूलचूल बदलाव करेंगे।पुलिस जिस व्यक्ति को अपराधी घोषित कर देगी और प्रमाणित कर देगी, उसके लिए यह बाध्यकारी होगा कि वह न्यायालय में जाकर अपने को निर्दोष सिद्ध करे। पुलिस का काम दोषी सिद्ध करना नहीं होगा। पुलिस को हम न्याय-सहायक मानेंगे, पक्षकार नहीं। हम पूरी न्यायिक प्रक्रिया को बदल देने के पक्षधर हैं। यदि न्यायिक प्रक्रिया हमारे तरीके से सुधार दी जाएगी, तो तत्काल न्याय होगा, सही न्याय होगा, न्याय सस्ता होगा और न्याय विश्वसनीय होगा।

नई राजनीतिक व्यवस्था में कार्यपालिका की स्वायत्तता

हम नई राजनीतिक व्यवस्था में कार्यपालिका और विधायिका को पूरी तरह अलग-अलग कर देंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रधानमंत्री का चुनाव संसद सदस्यों में से न करके बाहर से किया जाएगा, या यदि कोई सांसद प्रधानमंत्री बनता है, तो उसे संसद से त्यागपत्र देना अनिवार्य होगा। इस तरह पूरी की पूरी कार्यपालिका अलग होगी। मंत्रियों की नियुक्ति प्रधानमंत्री की सलाह पर की जाएगी। उसमें भी संसद का कोई दखल नहीं होगा। प्रधानमंत्री का चुनाव राष्ट्रपति, संसद और संविधान सभा —तीनों मिलकर करेंगे। यदि तीनों में से कोई वीटो कर देता है, तब ऐसी स्थिति में जनमत-संग्रह होगा। प्रधानमंत्री को हटाने में तीनों इकाइयों में से बहुमत प्रधानमंत्री पर अविश्वास कर सकता है। इस तरह हम कार्यपालिका को पूरी तरह स्वतंत्र कर देंगे।

राजनीति को धर्म से स्वतंत्र रखने की आवश्यकता

मैं बहुत लंबे समय से लगातार लिखता रहा हूँ कि धर्म और राजनीति को बिल्कुल अलग-अलग होना चाहिए। धर्म को राजनीति पर अप्रत्यक्ष नियंत्रण करना चाहिए, प्रत्यक्ष नहीं। जब धर्म संगठन का रूप ले ले, तब तो धर्म को राजनीति पर किसी भी तरह का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष

हस्तक्षेप करना ही नहीं चाहिए। दुर्भाग्य से बुद्ध काल से इसकी शुरुआत हुई और इस्लाम में इसे सबसे अधिक गंभीर खतरा बना दिया। दुनिया के अनेक देशों में राज्य धर्म के आधार पर कानून बनाता है। पाकिस्तान इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है, जहाँ ईशनिंदा से संबंधित गंदे कानून भी बने हुए हैं। लेकिन दुर्भाग्य से भारत में भी पंजाब ऐसी शुरुआत कर रहा है। धर्म के आधार पर कोई भी कानून बनना ही नहीं चाहिए। लेकिन आपने देखा होगा कि किस तरह पंजाब के मुख्यमंत्री धर्म के आधार पर कानून बनाते-बनाते धार्मिक मामले में ही फँस गए हैं। उन्हें समझ में नहीं आ रहा है कि क्या करना चाहिए। जिस भालू को पंजाब के मुख्यमंत्री कंबल समझकर ओढ़ रहे थे, उस भालू ने अब उन्हें पकड़ लिया है और वे बेचारे छटपटा रहे हैं। मैं भारत सरकार को भी सलाह देता हूँ कि वह हिंदू राष्ट्र के नाम पर राजनीतिक मामलों में हस्तक्षेप करने वालों से सावधान रहे। धर्म का राजनीति में कोई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। उसे सिर्फ सलाहकार की भूमिका तक रहना चाहिए।

संविधान संशोधन और सत्ता संतुलन पर पुनर्विचार

हम सब लोग श्रेष्ठतम संभव के सिद्धांत पर कार्य करते हैं। इसका मतलब यह है कि हम न सिर्फ आदर्शवादी हैं और न सिर्फ व्यवहारिक। हम आदर्श और व्यवहार का संतुलन लेकर चलते हैं। वर्तमान दुनिया में पहले राजतंत्र या तानाशाही थी। तानाशाही और राजतंत्र में बदलाव करके लोकतंत्र आया, लेकिन कई 100 वर्षों के बाद भी लोकतंत्र में किसी तरह का कोई सुधार नहीं हो सका, जबकि दुनिया में वर्तमान लोकतांत्रिक प्रणाली सफल नहीं हो पा रही है। हम न तो व्यवस्था स्थापित कर पा रहे हैं, न तानाशाही को समाप्त कर पा रहे हैं। वर्तमान लोकतांत्रिक प्रणाली आदर्श और व्यवहार का एक संतुलित मार्ग सिद्ध नहीं हो सकी है। इसलिए अब यह विचार करने का समय आ गया है कि वर्तमान लोकतंत्र में ऐसा कौन-सा बदलाव या सुधार किया जाए, जो अधिक कारगर हो सके। इस संबंध में हम सब लोग गंभीरता से चिंतन-मंथन कर रहे हैं और हमें पूरी उम्मीद है कि हम दुनिया को एक सुधरा हुआ लोकतंत्र दे सकेंगे, जिसकी शुरुआत भारत से होगी।

लोकतंत्र को आदर्श तभी माना जा सकता है, जब उसमें किसी प्रकार की सेना के दुरुपयोग की गुंजाइश भी कम हो और संविधान संशोधन के असीम अधिकार भी किसी एक इकाई के पास न हों। अब आप भारतीय संविधान पर विचार करिए। यदि भारत में संसद तानाशाह बन जाए, तो आप उसे कैसे रोक सकते हैं, क्योंकि संसद को संविधान संशोधन के असीम अधिकार प्राप्त हैं और समय-समय पर संसद ने इसका दुरुपयोग भी किया है। क्या यह लोकतंत्र है कि संसद को संविधान संशोधन के असीम अधिकार प्राप्त हों। संसद न्यायपालिका को भी अपने नियंत्रण में कर सके और कार्यपालिका को भी। पहला प्रश्न यही खड़ा होता है कि क्या संसद के संविधान संशोधन के अंतिम अधिकारों में कोई और नई व्यवस्था आवश्यक है। दूसरा यह प्रश्न भी उठता है कि जब न्यायपालिका ने एक बार संविधान के मूल ढाँचे की बात कह दी, संविधान का मूल ढाँचा क्या है, यह कौन तय करेगा। न्यायपालिका यह तय नहीं कर सकती और संसद यह तय करेगी नहीं। एक प्रश्न यह आता है कि यदि कभी सेना का दुरुपयोग करने की नौबत आ जाए, तो क्या भारत में उसकी कोई ऐसी व्यवस्था है, जो कोई भी एक इकाई इस तरह का प्रयोग नहीं कर सकती। यदि है, तो इस पर चर्चा होनी आवश्यक है। बताया जाता है कि राष्ट्रपति सेना के प्रमुख होते हैं, लेकिन वर्तमान संविधान में तो अब 71 के बाद राष्ट्रपति को रबर स्टैंप बना दिया है। यह बात भी विचार करने योग्य है कि वर्तमान समय में संविधान संशोधन के मामले में और सेना के दुरुपयोग के मामले में राष्ट्रपति के पास कितनी शक्ति बची है। इसलिए मेरा यह सुझाव है कि सत्ता के इतने अधिक केंद्रीकरण पर हमें फिर से नए तरीके से सोचना चाहिए। सुलभ व्यावहारिकता को थोड़ा-सा आदर्श की दिशा में बढ़ाकर दोनों के बीच तालमेल आवश्यक है। हम अंतिम रूप से यह निष्कर्ष निकाल चुके हैं कि लोकतंत्र में अब विश्वव्यापी संशोधन करने की जरूरत है और उस संशोधन की शुरुआत भारत से ही हो सकती है। दूसरी बात यह है कि हम किसी भी परिस्थिति में तानाशाही का खतरा नहीं उठा सकते, इसलिए हम संविधान संशोधन के संसद या न्यायपालिका के असीम अधिकारों पर किसी-न-किसी तरह का अंकुश लगाना चाहते हैं। इन दोनों परिणामों को प्राप्त करने के लिए हम चाहते हैं कि लोकतंत्र में सुधार करके हम संसदीय लोकतंत्र की जगह सहभागी लोकतंत्र अर्थात् लोक स्वराज की दिशा में आगे बढ़ें। हम दूसरा प्रयत्न यह कर रहे हैं कि राष्ट्रपति के अधिकार फिर से संविधान में शामिल हों। तीसरा, न्यायपालिका का हस्तक्षेप कम होना चाहिए। चौथा, संविधान के मूल ढाँचे की एक साफ व्याख्या होनी चाहिए। पाँचवाँ, आपातकाल लगाने या सेना के हस्तक्षेप को अधिक व्यावहारिक स्वरूप दिया जाना चाहिए। इन सब परिणामों को प्राप्त करने के लिए ही हम एक राष्ट्रीय संविधान सभा बना रहे हैं, जो इन सब विषयों पर विचार करके अपने सुझाव देगी। 25 और 26 जुलाई को अयोध्या में आयोजित सम्मेलन में भी इन सब विषयों पर विचार होगा और आगे की योजना बनेगी।

असफल नेतृत्व और गठबंधन की राजनीति

मैंने एक सामाजिक संस्था को नज़दीक से देखा है, जिसका नाम है एन. ए. पी. एम.। इस संस्था या संगठन में जो भी लोग शामिल होते हैं, वे व्यक्तिगत रूप से अथवा

संस्थागत रूप से किसी आंदोलन या जन-जागरण में पूरी तरह फेल हो जाते हैं। ऐसे सारे फेल लोग एन. ए. पी. एम. के सदस्य बन जाते हैं। जब भी इनका कोई सदस्य आंदोलन करता है, तो एन. ए. पी. एम. के लोग उस आंदोलन में शामिल हो जाते हैं और ऐसा सिद्ध करते हैं जैसे सैकड़ों संस्थाएँ इस आंदोलन में शामिल हैं, जबकि वास्तव में कुछ नहीं होता है। एक किसान आंदोलन को छोड़कर और कोई ऐसा सफल आंदोलन नहीं हुआ, जिसमें इन लोगों ने कोई उल्लेखनीय बदलाव किया हो। यह एन. ए. पी. एम. अब प्रभाव खोता जा रहा है। ठीक इसी तरह की स्थिति राजनीति में भी है। जो राजनीतिक दल अपना प्रभाव खोते जा रहे हैं, वे असफल नेता या वे असफल दल मिलकर एक संयुक्त विपक्षी दल बना रहे हैं, जिनका कोई अस्तित्व नहीं है। लेकिन यह एक साथ बैठकर जनता के बीच यह प्रभाव देना चाहते हैं कि हम अनेक दलों के लोग एकजुट होकर मोदी को चुनौती देंगे। इनमें कांग्रेस को छोड़कर अन्य राजनीतिक दलों का अस्तित्व नगण्य होता जा रहा है। उनकी मजबूरी है कि इनका स्वतंत्र अस्तित्व सिर्फ संयुक्त मोर्चे के नाम पर ही ज़िंदा रह सकता है, अन्यथा यह इतिहास बन जाएंगे। सभी असफल नेता वर्तमान समय में इसी तरह एक-दूसरे के साथ जुटकर असफल नेताओं का एक समूह बनाने के लिए मजबूर हो गए हैं। एन. ए. पी. एम. और संयुक्त मोर्चा ऐसे ही मरणासन्न राजनीतिक दलों और सामाजिक संगठनों का एक समूह हैं।

महिला-पुरुष संबंधों में अनावश्यक हस्तक्षेप पर पुनर्विचार

महिला और पुरुष के आपसी संबंध कैसे हों, इस मामले में वर्तमान समय में कानून भी बहुत दखल दे रहा है और समाज भी। धर्मगुरु समाज को यह समझाते हैं कि महिला-पुरुष के संबंधों की सीमा इस प्रकार होनी चाहिए, जबकि मेरे विचार से समाज, कानून और धर्मगुरु—ये तीनों अनावश्यक हस्तक्षेप कर रहे हैं। महिला और पुरुष के संबंध कैसे हों, यह सिर्फ परिवार तय कर सकता है, कोई अन्य नहीं। समाज को इस मामले में पूरी तरह दूर रहना चाहिए। कोई महिला अगर बहुत भड़काऊ कपड़े पहनकर निकलती है और उसके परिवार को कोई आपत्ति नहीं है, तब समाज को इस मामले में चुप रहना चाहिए। समाज किसी मामले में तभी आपत्ति कर सकता है, जब समाज ने विधिवत ऐसा कोई नियम बनाया हो और नियम का उल्लंघन होने पर भी समाज सिर्फ बहिष्कार कर सकता है, इससे अधिक कुछ नहीं। जब तक कोई ऐसा नियम बना हुआ नहीं है, तब तक कोई भी व्यक्ति समाज के नाम पर इस प्रकार महिला-पुरुष संबंधों पर टीका-टिप्पणी नहीं कर सकता। मेरा यह मानना है कि धर्मगुरुओं को भी इस मामले में सावधान रहना चाहिए।

जनजागरण का आधार: प्रदर्शन नहीं, तर्क

पूरी दुनिया में और विशेषकर भारत में यह प्रवृत्ति अब तक बढ़ रही है कि जन-जागरण के लिए तर्क या विचार-प्रचार का कोई महत्व नहीं रह गया है। अब तो जन-जागरण के लिए कलात्मक अथवा प्रचारात्मक माध्यम ही एकमात्र साधन है। इसी प्रवृत्ति को देखते हुए अनेक तरह के तरीके अपनाए जा रहे हैं, चाहे वह संसद हो या जंतर-मंतर हो या अन्य स्थान हो। कोई जन-जागरण के लिए मुंडन करा रहा है, कोई नदी के पानी में बैठ जा रहा है, कोई अनशन कर रहा है, कोई नारे लगा रहा है, जेल जाने की कोशिश कर रहा है, कोई दूसरों को गालियाँ दे रहा है। कोई भी ऐसा तरीका अपनाया जा रहा है, जिस तरीके से वह मीडिया में हाईलाइट हो जाए। मीडिया का सहारा लेते ही वह व्यक्ति लोकप्रिय हो जाएगा और लोकप्रिय होते ही वह जीवन में सफल हो जाएगा। इस प्रवृत्ति को रोकना भी बहुत आवश्यक है और रोकना बहुत कठिन भी है। हम लोग इस प्रवृत्ति को रोकने का प्रयास नहीं कर रहे हैं, बल्कि हम एक नया विकल्प देने का प्रयास कर रहे हैं, जिस विकल्प में कोई नाटकबाजी न हो, जिसमें मीडिया को आकर्षित करने के लिए कोई शॉर्टकट न हो। विचारों के आधार पर व्यक्ति आगे बढ़े, विचारों के आधार पर ही जन-जागरण हो। इस तरह का अभिनव प्रयास हम लोग कर चुके हैं और धीरे-धीरे इस प्रयास में सफलता भी मिल रही है। हमें पूरा विश्वास है कि हम नाटकबाजी के प्रभाव को सीमित करने में सफल हो जाएंगे। हम विकल्प देंगे, विरोध नहीं।

लोक-नियंत्रित शासन व्यवस्था की नई रूपरेखा

लोकतंत्र का जो नया संस्करण समाज के सामने रख रहे हैं, उसमें लोकतंत्र दो शब्दों को मिलाकर बनता है—लोक और तंत्र। हम लोकतंत्र की वर्तमान परिभाषा को गलत मानते हैं और हम लोकतंत्र की नई परिभाषा लोक-नियंत्रित तंत्र को विकसित कर रहे हैं। इस परिभाषा के अनुसार लोक का मतलब समाज होगा और तंत्र का मतलब व्यवस्था। समाज का व्यवस्था पर संविधान के माध्यम से नियंत्रण होगा। इस तरह संविधान व्यवस्था से ऊपर होगा और समाज संविधान से ऊपर होगा। तंत्र के भी दो भाग होंगे—एक समाज व्यवस्था और एक सुरक्षा व्यवस्था। सुरक्षा व्यवस्था के लिए हम एक सरकार बनाएंगे, जैसी वर्तमान में बनी हुई है। बाकी सब सुरक्षा को छोड़कर अन्य सभी कार्यों के लिए हम एक समाज व्यवस्था बनाएंगे, जो परिवार से लेकर संघ सभा तक जाएगी। इस तरह सारे कार्य विभाजित होंगे। प्रदेशों की जगह संघ सभा के पास अधिकार होंगे। हम संघ सभा को लोकसभा से भी

अधिक वरीयता देंगे, क्योंकि संघ सभा अधिक महत्वपूर्ण होगी। लेकिन लोकसभा भी हमारी सुरक्षा के लिए जिम्मेदार है, इसलिए शक्ति लोकसभा के पास अधिक होगी। दोनों ही सभाएँ संविधान से संचालित होंगी और संविधान लोक अर्थात समाज या समाज द्वारा बनाई गई कोई अलग इकाई तैयार करेगा। ऐसी इकाई को ही हम संविधान सभा कहेंगे। स्पष्ट है कि हमारे आदर्श लोकतंत्र में आपको सब कुछ सुधरा हुआ नज़र आएगा।

माँ संस्थान का लक्ष्य समझदार नागरिक, सशक्त लोकतंत्र

माँ संस्थान को इस बात का गौरव है कि दुनिया में अकेला ऐसा संस्थान है, जो समाज में घटती हुई समझदारी को अधिक महत्वपूर्ण कारण मान रहा है और उसके अनुसार समझदार लोगों की संख्या समाज में बढ़नी चाहिए। इस दिशा में संस्थान निरंतर प्रयास भी कर रहा है और सफलता भी मिल रही है। आप गंभीरता से सोचिए कि जो लोकतंत्र आप भारत में देख रहे हैं, वह कितना रद्दी लोकतंत्र है कि यह विपक्ष खुलकर कहता है कि उसे सरकार से प्रश्न पूछने का अधिकार है। आप विचार करिए कि भारत में मीडिया खुलकर कहता है कि उसे सरकार से प्रश्न पूछने का अधिकार है। अरे नासमझो, यह अधिकार अगर विपक्ष को है, मीडिया को है, तो क्या अन्य नागरिकों को नहीं है? ऐसा कौन-सा नागरिक है, जिसे सरकार से प्रश्न पूछने का अधिकार नहीं है? फिर यह मूर्ख घमंड करते हैं कि विपक्ष को यह अधिकार है, लोकतंत्र में मीडिया को यह अधिकार है। यह सब उलजलूल बातें हैं। प्रश्न पूछना और उत्तर देना, यह दोनों हर आदमी के साथ जुड़े हुए हैं। हर आदमी किसी से भी प्रश्न कर सकता है, क्योंकि जिसने उसकी सरकार बनाई है, जिसने उसे वोट दिया है, वह अपनी अमानत के विषय में पूछ भी सकता है। यह सिर्फ विपक्ष और मीडिया की ठेकेदारी नहीं है। यही कारण है कि हम धीरे-धीरे मीडिया और विपक्ष को भी समझदार बना रहे हैं। हम सबको इस बात का प्रशिक्षण दे रहे हैं कि सिर्फ प्रश्न पूछना ही नहीं, उत्तर देना भी सीखो।

लोकस्वराज के लिए वैचारिक और सामाजिक अभियान

हम लोगों की संस्था दो दिशाओं में एक साथ कार्य कर रही है। एक दिशा है व्यवस्था परिवर्तन और दूसरी दिशा है वर्तमान व्यवस्था में सुधार। ये दोनों कार्य अलग-अलग हैं, लेकिन हम लोग दोनों को एक साथ लेकर चल रहे हैं। स्पष्ट है कि हम व्यवस्था परिवर्तन के लिए सिर्फ एक काम कर रहे हैं कि वर्तमान लोकतंत्र को लोक स्वराज में बदला जाए। इसके लिए सबसे पहले संविधान को तंत्र-मुक्त करने की योजना बनी। हम इसी को व्यवस्था परिवर्तन की शुरुआत मान रहे हैं। यदि संविधान बनाने का अंतिमअधिकार तंत्र के हाथ से निकलकर किसी अन्य इकाई के पास हो जाए, तो हम व्यवस्था परिवर्तन की शुरुआत मान लेंगे। इसके साथ-साथ हम व्यवस्था में सुधार के लिए जन-जागरण भी करते रहेंगे। इसका मतलब यह है कि हम आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, संवैधानिक, सामाजिक—सब प्रकार की व्यवस्थाओं पर लगातार चर्चा करके उसमें क्या सुधार हो सकता है, क्या बदलाव हो सकता है, इस तरह के सुझाव समाज में देंगे। इस तरह हम व्यवस्था में सुधार और व्यवस्था परिवर्तन दोनों को एक साथ जोड़कर निरंतर आगे बढ़ते रहेंगे। व्यवस्था में सुधार के लिए हम लोग प्रतिदिन रात को 7:30 बजे से 9:00 बजे तक देशभर के लोगों के साथ ज़ूम पर जुड़कर अलग-अलग विषयों पर चर्चा करते हैं और यह चर्चा लगभग 3 वर्षों से प्रतिदिन चल रही है। दूसरी ओर व्यवस्था परिवर्तन के लिए लोक व्यवस्था जागरण अभियान शुरू किया गया है और उसके लिए देशभर में यात्राएँ करके एक टीम बनाई जा रही है, जो संविधान को तंत्र की गुलामी से मुक्त करने की दिशा में योजना बना ले। इस तरह वर्तमान व्यवस्था के एक नए विकल्प की योजना बनाई जा रही है।आप यदि इस कार्य से आंशिक रूप से भी जुड़ना चाहते हैं, तो आप ढाई सौ रुपए वार्षिक का दान देकर ज्ञान यज्ञ पाक्षिक पत्रिका के ग्राहक बन सकते हैं। आपको सारी जानकारियाँ हर 15 दिन में घर बैठे प्राप्त होती रहेंगी।

इथेनॉल: माइलेज से बड़ा प्रश्न राष्ट्रीय हित का

मैंने आज एथेनॉल पर अपने विचार व्यक्त किए थे। हमारे अनेक साथियों को मेरे विचार बहुत बुरे लगे। कुछ ने कहा कि एथेनॉल से गाड़ियों का माइलेज घटता है। उन्होंने कहा कि गाड़ियाँ अधिक खराब भी होती हैं। लेकिन किसी ने इस बात का उत्तर नहीं दिया कि एथेनॉल का पर्यावरण पर क्या प्रभाव पड़ता है, एथेनॉल का विदेशी आयात पर क्या प्रभाव पड़ता है, एथेनॉल का किसानों के उत्पादन पर क्या प्रभाव पड़ता है। यदि माइलेज कुछ घट रहा है, यदि कुछ गाड़ियाँ खराब हो रही हैं, तो यह उतनी बड़ी बात नहीं है, जितनी पर्यावरण प्रदूषण, विदेश से आयात और किसानों की मौत। अगर दोनों की तुलना की जाए, तो मुझे ऐसा दिखता है कि मुस्लिम देशों के पक्षकार ही सिर्फ इस तुलना में इस तरह की भाषा लिख सकते हैं, जैसा कुछ लोगों ने लिखा। आप भारत के 140 करोड़ लोगों की तरफ से इसका तुलनात्मक अध्ययन बताइए कि एथेनॉल अगर 100% हो जाए, तो भारत और समाज को कितना लाभ होगा और कितना नुकसान होगा। यदि आपके पास कोई तुलनात्मक अध्ययन है, तो मैं जानना चाहता हूँ। अन्यथा मुस्लिम देशों की वकालत करने वाले लोगों को चुप रहना चाहिए। अगर आपका विरोध राजनीतिक है, तो मुझे कुछ

नहीं कहना है। लेकिन यदि आपका विरोध सामाजिक है, यदि आपका विरोध सैद्धांतिक है, यदि आपका विरोध राष्ट्रीय स्तर का है, तो मैं आपसे दोबारा विचार करने की अपील करता हूँ। आप फिर से सोचकर बताइए कि एथेनॉल से लाभ कितना है और नुकसान कितना है। मैं अभी अपनी बात पर कायम हूँ कि एथेनॉल से होने वाले नुकसान की तुलना में लाभ कई गुना अधिक है।

बाल विवाह और सरकारी हस्तक्षेप पर पुनर्विचार

हम बाल विवाह की पूरी तरह स्वतंत्रता देंगे। कानून किसी भी प्रकार से विवाह की उम्र तय नहीं कर सकता। यह शुद्ध पारिवारिक और सामाजिक विषय है। हम बाल विवाह को बुरा भी नहीं मानते हैं। यदि कोई 6 महीने के बच्चे का भी विवाह कर देता है, यह उस परिवार की स्वतंत्रता है। उसकी चिंता ग्राम सभा कर सकती है। इस संबंध में ग्राम सभा नियम बना सकती है, सरकार नहीं बना सकती। विवाह का उद्देश्य क्या है? विवाह का उद्देश्य है जीन परिवर्तन, अर्थात एक ही जीन के बालक और बालिका मिलकर संतान पैदा न करें। सिर्फ इतना ही विवाह का उद्देश्य है। यदि बचपन में ही जीन बदल दी जाए, अर्थात दूसरे परिवार की लड़की हमारे परिवार में लड़की के समान रहने लगे, इससे सरकार को क्या दिक्कत होगी? मैं मानता हूँ कि तेज आबादी वृद्धि के कारण बाल विवाह रोक को महत्व मिला और बाल विवाह को रोका गया, लेकिन अब वह समस्या भी खत्म हो गई है। इसलिए मेरे विचार से नई व्यवस्था में बाल विवाह कानून को पूरी तरह समाप्त कर दिया जाए। मेरा यह सुझाव है कि बाल विवाह के मामले में सरकार का हस्तक्षेप अनावश्यक है।

संविधान कानून और शासन भूमिकाओं के पुनर्निर्धारण का प्रस्ताव

हम आज इस विषय पर विचार कर रहे हैं कि वर्तमान लोकतंत्र में कौन-सी कमी है, जो वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था को सफल नहीं होने दे रही है और इस कमी का समाधान क्या है। मैं इस बात से सहमत हूँ कि लोक का कोई भौतिक स्वरूप बना हुआ नहीं है। दूसरी बात यह है कि हर मामले में जनमत-संग्रह संभव भी नहीं है। तीसरी बात, मैनेजर, संरक्षक और प्रतिनिधि के बीच बहुत अंतर होता है। वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था इन तीनों का अंतर समझने में असमर्थ है। मैनेजर कानून बना सकता है, कानून का पालन करा सकता है, लेकिन संविधान नहीं बना सकता। संविधान निर्माण में संरक्षक, प्रतिनिधि और मैनेजर तीनों की समान भूमिका होनी चाहिए और यदि ये तीनों सर्वसम्मत न हों, उस स्थिति में मालिक अर्थात जनता को जनमत-संग्रह के द्वारा निर्णय करना चाहिए। वर्तमान लोकतंत्र में कुछ सुधार करते हुए प्रतिनिधि, संरक्षक और मैनेजर को अलग-अलग करें। यदि संसद को हम प्रतिनिधि बनाना चाहते हैं, उस स्थिति में संसद को संविधान बनाने तक सीमित कर दिया जाए। कानून बनाने का कार्य हम मैनेजर को दें। अब यह तय करना हम सब का काम है कि मैनेजर कौन होगा, प्रतिनिधि कौन होगा, संरक्षक कौन होगा और तीनों की शक्तियाँ और सीमाएँ क्या होंगी। हम लगातार इस विषय पर चिंतन कर रहे हैं। हमारा यह मानना है कि हम त्रि-स्तरीय व्यवस्था को परिवार से शुरू कर सकते हैं। अर्थात परिवार में एक मैनेजर होगा, जिसे परिवार का मुखिया माना जाएगा, एक संरक्षक होगा, जिसे हम परिवार का प्रमुख कह सकते हैं और एक संविधान सभा होगी, जिसकी मुख्य भूमिका संविधान संशोधन तक सीमित रहेगी।

अयोध्या से लोकव्यवस्था जागरण अभियान का राष्ट्रीय शंखनाद- ज्ञानेन्द्र आर्य

कार्यक्रम में बक्सर (बिहार) से आचार्यकुल के राष्ट्रीय संयोजक आचार्य धर्मेंद्र तथा बलिया के श्री जे. पी. सिंह की गरिमामयी उपस्थिति ने प्रतिभागियों का विशेष मार्गदर्शन किया। उनके विचारों ने अभियान की दिशा, उद्देश्य और आवश्यकता को स्पष्ट किया। उन्नाव के श्री दिलीप मृदुल द्वारा देशी बीजों के संरक्षण पर प्रस्तुत विचार, भोपाल के अभिशेष अज्ञानी द्वारा निर्दलीय लोकतंत्र की अवधारणा तथा शिविराध्यक्ष श्री आर. के. पटेल द्वारा बजरंग मुनि जी के समाजनिष्ठ जीवन के संस्मरणों ने अधिवेशन को विशेष ऊँचाई प्रदान की। यह अधिवेशन उन ऐतिहासिक संविधान मंथन शिविरों की भी स्मृति लेकर आया, जिनका आयोजन लगभग 1990 के दशक में बजरंग मुनि जी द्वारा रामानुजगंज और अंबिकापुर सहित अनेक स्थानों पर किया जाता था। उन शिविरों में डॉ. सुभाष कश्यप, रामबहादुर राय, अशोक गाडिया, आचार्य पंकज जैसे प्रख्यात विद्वानों का वैचारिक मंथन हुआ करता था। उन ऐतिहासिक शिविरों के प्रत्यक्ष सहभागी रहे वरिष्ठ साथियों में बदायूँ के आदरणीय बहादुर सिंह तथा बेगूसराय (बिहार) के आदरणीय जयशंकर कुमार की उपस्थिति ने अभियान की निरंतरता और वैचारिक परंपरा को जीवंत कर दिया।

दक्षिण भारत से डॉ. एम. एच. पाटिल (कर्नाटक), वीरास्वामी जी (हैदराबाद) तथा श्रीनिवास जी (तमिलनाडु) ने सहभागिता निभाकर स्पष्ट किया कि लोकव्यवस्था जागरण अभियान अब केवल उत्तर भारत तक सीमित नहीं

रह गया है। इसी प्रकार ओडिशा से कमल महाप्रभु, दुर्गा प्रसाद होता, निरंजन होता तथा हमारे पुराने साथी सुवेंदु महापात्र, महाराष्ट्र से डॉ. प्रकाश किरकिरे और मध्य प्रदेश के पेंड्रा से सुचंद्र तिवारी अपने वरिष्ठ साथियों के साथ उपस्थित रहे। इन सभी की सक्रिय सहभागिता ने अधिवेशन को वास्तविक राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया। गोरखपुर के गांधीवादी चिंतक राजपाल मिश्रा तथा मेरठ के श्री ओमपाल सिंह सहित अनेक वरिष्ठ साथियों की उपस्थिति और सक्रिय सहभागिता ने यह विश्वास मजबूत किया कि अब अभियान को राष्ट्रीय संस्थागत स्वरूप देने का समय आ गया है। इसी भावना के साथ अधिवेशन के दौरान केंद्रीय कार्यकारिणी के गठन की घोषणा की गई। इस निर्णय का सभी प्रतिनिधियों ने स्वागत किया और इसे अभियान की भावी दिशा के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण कदम माना। अधिवेशन की समीक्षा बैठक में अभियान के मार्गदर्शक एवं मौलिक विचारक आदरणीय बजरंग मुनि जी ने देशभर से आए प्रतिनिधियों की व्यापक सहभागिता को देखते हुए इस आयोजन को राष्ट्रीय अधिवेशन की संज्ञा दी। उन्होंने रांची, राजस्थान और दक्षिण भारत में प्रस्तावित प्रांतीय अधिवेशनों के उपरांत अगले राष्ट्रीय अधिवेशन के लिए वृंदावन का प्रस्ताव रखा।

अयोध्या का यह अधिवेशन केवल दो दिनों का कार्यक्रम नहीं था। यह उस वैचारिक यात्रा का नया अध्याय है, जो "समाज की स्वशासी शक्ति के जागरण, लोकशक्ति के संगठन तथा राज्य-निर्भरता से मुक्ति" के संकल्प के साथ आगे बढ़ रही है। इस अधिवेशन ने यह विश्वास और मजबूत किया कि यदि समाज संवाद, अध्ययन, संगठन और सेवा के माध्यम से स्वयं को पुनः संगठित करता है, तो "तंत्र-मुक्त संविधान, युक्त समाज व्यवस्था" का स्वप्न केवल विचार नहीं, बल्कि एक व्यवहारिक राष्ट्रीय अभियान बन सकता है।

ज्ञानतत्व पाक्षिक पत्रिका की नई सदस्यता के लिए आप लोग अपने साथियों परिचितों एवं मित्रों को सुझाव दे सकते हैं, तथा किसी भी प्रकार के सुझाव एवं शिकायत के लिए निम्नलिखित व्यक्तियों से संपर्क कर सकते है-

राबिन विश्वास-9630766001,
संतोष मखरिया-9203771188,
संजय तिवारी-7753934242,
लालबाबू रवि- 7000475949